



अंजन ग्राम का आदिवासी

पिंगाक्ष

मिथिलेश



ज्ञानज्योति एजुकेशन एंड रिसर्च फाउंडेशन ट्रस्ट

जमशेदपुर

झारखण्ड-831005

पिंगाक्ष
(पुरातात्विक शोध पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास)

पिंगाक्ष-यह उपन्यास झारखण्ड के गुमला जिले में अवस्थित आंजन ग्राम के आसपास युगों से निवास करने वाले आदिम आदिवासियों के परिवार में जन्मे एक ऐसे आदिवासी युवक की कहानी है, जो अपने आदिपूर्वज हनुमानजी की तलाश में तीर्थ स्थलों की खाक छानता फिरता है। कालान्तर में उसके साथ तीन अन्य युवक भी जुड़ते हैं जो रामजन्म स्थल 'अवध' के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले प्राचीन पुरातात्विक साक्ष्यों की तलाश में हैं।

बारहवीं सदी से लेकर वर्तमान सदी की विशिष्ट ऐतिहासिक घटनाओं को समेटे यह उपन्यास, झारखण्ड, बिहार और उत्तरप्रदेश के अति प्राचीन तीर्थ स्थलों की पृष्ठभूमि में रहस्य और रोमांच का एक अद्भुत तिलस्म रचता है।

Pingaksha

पिंगाक्ष

श्रेणी- फिक्शन (उपन्यास)

@ : डॉ० मिथिलेश कुमार चौबे

प्रथम संस्करण : 2024

सहयोग राशि : 100 रुपये

ISBN:978-93-34162-93-6

प्रकाशक एवं मुद्रक

ज्ञानज्योति एजुकेशनल एंड रिसर्च फाउंडेशन ट्रस्ट

62, ब्लॉक-3, शास्त्रीनगर, कदमा, जमशेदपुर

झारखण्ड -831005

संपर्क-9229951811

इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश की फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक तथा मशीनी, किसी भी माध्यम से अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनर्प्रयोग द्वारा, किसी भी रूप में पुरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता। किसी भी तरह के विवाद की स्थिति में न्यायिक क्षेत्र जमशेदपुर होगा।

भूमिका

आधुनिक झारखण्ड के गुमला जिले में अवस्थित आंजन ग्राम का अर्जुन तिग्गा वर्षों बाद अपने पिता के अंतिम संस्कार के लिए अपने गांव अंजन ग्राम लौटता है। परिस्थितियाँ उसे स्वर्णरेखा के तट पर स्थित एक अति प्राचीन शिव मंदिर तक जाती हैं, जहां से उसके जीवन में अद्भुत बदलाव होने लगते हैं।

उसका प्रारब्ध उसे निरंजना नदी के तट पर मौजूद पौराणिक पितृतीर्थ गया ले जाता है।

गया तीर्थक्षेत्र में अवस्थित पंद्रहवीं सदी के एक प्राचीन दसनामी मठ में अर्जुन तिग्गा की मुलाकात प्रयाग के तीन युवकों से होती है..... और फिर शुरू होती है श्री राम जन्मभूमि, अवध के अस्तित्व को प्रमाणित करने वाले प्राचीन साक्ष्यों की तलाश....

बौद्ध धर्म के पतन एवं इस्लाम के विस्तार के कारणों तथा सिक्ख गुरुओं के अयोध्या से संबंधों पर प्रकाश डालता दसवीं शताब्दी से इक्कीसवीं शताब्दी तक के भारत के इतिहास के अनछुए पहलुओं को समेटता एक शोध आधारित ऐतिहासिक उपन्यास, जिसमें बतौर पाठक आप पृष्ठ-दर-पृष्ठ बहुत ही आकर्षक भूरे नेत्रों वाले महाबली चिरंजीवी पिंगाक्ष की उपस्थिति का अनुभव किये बगैर नहीं रह पाएंगे।

@लेखक

ईसवी सन 2023
अयोध्या, उत्तरप्रदेश, भारत

सरयू नदी के पवित्र तटों के बीच स्थित अयोध्या!

हनुमानगढ़ी

हनुमानगढ़ी के प्रवेश द्वार के ठीक सामने खड़े भूरे नेत्रों वाले अत्यंत ही मनमोहक पांच वर्षीय बालक की तरफ आगंतुकों की निगाहें अनायास ही ठहर जातीं। लेकिन, आने जाने वाले लोगों की नजरों से लापरवाह उस बालक की निगाहें बार-बार एक दुकान के अंदर रखी पीतल की गदा पर अटक जातीं। अचानक ही बालमन में जाने क्या कौतुक जागा, उसने अप्रत्याशित रूप से उस दुकान के सामने बोरी में रखे सिन्दूर को अपने सिर पर उड़ेल लिया। इस अप्रत्याशित घटना से हतप्रभ दुकानदार उसे पकड़ने के लिए लपका।

लेकिन, उस बालक ने बिजली की फुर्ती के साथ दुकान के सामने सजा कर रखी सिन्दूर से भरी परातों को भी एक एक कर अपने सिर पर उड़ेलना प्रारंभ कर दिया। जबतक दुकानदार कुछ

समझ पाता तब तक बालक किसी नटखट वानर की तरह दुकान के अंदर प्रवेश कर चुका था. अंदर घुसते ही उसने पीतल की उस भारी भरकम पीतल गदा को उठाया और बिजली की फुर्ती के साथ हनुमानगढ़ी मंदिर के प्रवेश द्वार की तरफ भागा और देखते ही देखते सैकड़ों लोगों की भीड़ के मध्य से रास्ता बनाता वह बालक मंदिर के भीतर प्रवेश कर गया और किंकर्तव्यविमूढ़ दुकानदार अपनी दुकान के सामने की पूरी तरह से सिंदूरी हो गई भूमि को देखता भर रह गया ।

जैसी शरारत इस पांच वर्षीय बालक ने की थी, वैसी शरारत तो हनुमानगढ़ी के परकोटे में मौजूद सैकड़ों बंदरों ने भी कभी नहीं की थी ।

दुकानदार ने लाचार होकर बच्चे के माता-पिता की तलाश शुरू की, किन्तु उसे असफलता ही हाथ लगी ।

रामजन्मभूमि मंदिर, अयोध्या

अयोध्या यानी हजार किस्से-कहानियों का शहर!!

अयोध्या का अर्थ है, जिसे शत्रु न जीत सके!! पांच सौ वर्षों बाद अयोध्या फिर से अपने नाम को चरितार्थ कर रही है। नवनिर्मित राम मंदिर में लाखों रामभक्तों की भीड़ रामलला के दर्शन के लिए उमड़ पड़ी है। इसी भीड़ में अर्जुन तिग्गा अपने पांच वर्ष पुत्र पिंगाक्ष और अपनी पत्नी के साथ शामिल है।

भीड़ में खड़ा अर्जुन मंदिर को अलपक निहार रहा है। उसके रोम-रोम से भक्ति और समर्पण बरस रहा है। आज का दिन अर्जुन के लिए बहुत खास है क्योंकि इस मंदिर के निर्माण में उसकी भी एक बहुत छोटी सी भूमिका रही है। अपने आसपास से बेखबर वह इतना मग्न है कि उसे इतना भी याद नहीं कि उसकी पत्नी और पांच वर्षीय पुत्र भी उसके साथ हैं। वह भीड़ के दबाव से बेखबर राम भक्ति में मग्न है।

अचानक पत्नी द्वारा झकझोरे जाने पर उसकी तंद्रा टूटती है।

पिंगाक्ष । 8

“अर्जुन!”, उसकी पत्नी चिल्लाती है, “पिंगाक्ष इस भीड़ में कहीं खो गया है!!”

अर्जुन, सहज भाव से उसकी तरफ देखते हुए कहता है, “चिंता मत करो! मुझे पता है वह कहां गया होगा।”

“क्या तुम्हारी मति मारी गई है?”, उसकी पत्नी बिलखते हुए कहती है, “लाखों की इस भीड़ में एक पांच वर्ष का बालक गुम हो गया है और..... और तुम निश्चित होकर कह कर रहे हो कि तुम्हें पता है कि वह कहां होगा।”

“हां, मुझे पता है वह कहां गया होगा।”, अर्जुन निश्चितता के भाव के साथ अपनी पत्नी को आश्वस्त करता है, “तुम बेवजह चिंता ना करो। प्रभु के दर्शन कर हम उसी स्थान पर चलेंगे, जहां वह गया है।”

चिंता और गुस्से से तमतमाती उसकी पत्नी कुछ कह ना सकी। इसके बाद अर्जुन ने बड़े ही भक्ति-भाव के साथ रामलला के दर्शन किए और उसके बाद पत्नी का हाथ पकड़कर बोला- “आओ चलें!”

चिंता और भय से थरथराती उसकी पत्नी अर्जुन के पीछे-पीछे चलने लगती है। उसकी व्याकुल आँखें अपने अबोध पुत्र को तलाश रहीं हैं। लेकिन, अर्जुन निश्चित हो भीड़ को चीरता आगे बढ़ रहा है।

पैदल चलते हुए थोड़ी देर में वे हनुमानगढ़ी पहुंचे। इस घड़ी हनुमानगढ़ी में श्रद्धालुओं की भारी भीड़ लगी हुई थी। पत्नी चिंतित होकर पूछती है, “इतनी भीड़ में उसे कहाँ खोजेंगे?” “मुझे पता है वह कहाँ होगा।”, अर्जुन हँसता है। पत्नी को लगा, उसका पति पक्का बौरा गया है।

अर्जुन ने उसका हाथ पकड़ा और भीड़ को चीरते हुए हनुमानगढ़ी मंदिर के पिछले दरवाजे से मंदिर के मुख्य प्रांगण में प्रवेश कर गया। जाने क्यों उसकी पत्नी को लगा मानो अर्जुन यहां पहले भी आ चुका है।

“देखो, वहां है तुम्हारा पुत्र!”, अर्जुन ने सामने की तरफ इशारा किया।

पत्नी ने सामने जो दृश्य देखा तो सकते में आ गई। पिंगाक्ष अपने सारे शरीर पर सिंदूर लपेटे, हाथों में पीतल की गदा लिए हनुमानजी के मंदिर के समीप उछल-कूद कर रहा था। क्या यह पिंगाक्ष ही है?”, उसने अविश्वास भरे शब्दों में प्रश्न किया।

“विश्वास न हो तो उसके सामने जाकर संतुष्ट हो लो!”, अर्जुन हँसा।

माता दौड़ कर पुत्र के पास गई। पुत्र ने अपने शरीर पर इतना सिंदूर लगा रखा था कि वह शायद अपने पुत्र को ही न पहचान पाती, अगर उसने पिंगाक्ष की अत्यंत ही आकर्षक भूरी आँखों में झाँका नहीं होता। उसने प्रसन्न भाव से पलट कर अपने पति की ओर देखा, लेकिन अर्जुन तो खुद भी बेसुध सा हनुमानजी के सामने दंडवत पड़ा था। उसे लगा मानो उसका पति और पुत्र दोनों पागल हो गए हों।

“हे हनुमानजी! मेरे पति और पुत्र को मुझे सकुशल लौटा दो!!” वह हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है, “न जाने किसने इनपर जादू-टोना कर दिया है। यहाँ आने तक तो दोनों ठीक-ठाक ही थे, लेकिन अब उनकी हालत देखकर ऐसा मुझे लगता है कि मैं भी इनकी तरह बौरा जाऊँगी।”

कुछ देर बाद जब पिता-पुत्र सामान्य हुए तो लौटकर उसके पास आए और वहीं मंदिर के भीतर बने एक चबूतरे पर बैठ गए। लेकिन, उन्हें बैठे अभी कुछ पल ही बीते होंगे कि एक व्यक्ति दौड़ता हुआ उनके पास आया और हाँफते हुए बोला, “कब से आप लोगों को तलाश रहा हूँ। आपके इस नन्हे बालक ने मेरी दूकान से बोरी भर सिंदूर उठाकर अपने शरीर पर डाल लिया और पीतल की इतनी भारी गदा वहां से उठाकर कूदता-फांदता मंदिर में अन्दर घुस आया।”, साँस लेने के लिए रुकने के बाद वह चकित स्वर में बोला, “फुर्तीला तो इतना है कि इतनी भीड़ में भी किसी चपल वानर की तरह बिजली की तेजी से इस मंदिर में घुस आया और इसे यहाँ के संतरी भी नहीं रोक पाए। उसका अंदाज देखा आपने?, मंदिर के

प्रांगण में तो ऐसे भ्रमण कर रहा हैं मानो हनुमानगढ़ी इसके दादा-परदादा की जागीर हो।”

आगन्तुक की बातें सुनकर अर्जुन ने मन ही मन हँसते हुए सोचा, ‘जागीर वाली बात तो यह ठीक ही कह रहा है।’

“कितने का नुकसान हुआ है”?, प्रत्यक्षत उसने दूकानदार से पूछा।

“पांच हज़ार रुपये!”

“पांच हज़ार रुपये?”, पत्नी ने सकते में आ गई।

“बहन, इस बालक ने अपने शरीर पर तो सिर्फ बोरी भर सिंदूर उधेला था, किन्तु इसने दूकान के सामने परात में रखा सारा सिंदूर जमीन पर बिखेर दिया था। आप स्वयं चल कर देख लीजिये, मेरी दूकान के सामने की पूरी की पूरी भूमि सिंदूरी हो गई है।”, दुकानदार ने उत्तर दिया।

दुकानदार की बातों पर मुस्कराते हुए अर्जुन ने अपनी जेब से पांच-पांच सौ रुपये के दस नोट निकाले और उसे सौप दिए।

“क्या माज़रा है? तुम अपने पुत्र को डांटने के बजाय मुस्कुरा रहे हो?” पत्नी कुढ़ते हुए बोली, “.....और उधर देखो.....तुम्हारा पुत्र फिर से हनुमानजी के समक्ष नृत्य करते हुए लोगों के आकर्षण का केंद्र बन गया है। अगर हम थोड़ी देर यूँ ही बैठे रह गए तो लोग इसकी भी पूजा-अर्चना आरम्भ कर देंगे।”

कुछ देर बाद जब तीनों हनुमानगढ़ी से बाहर निकले तो मौसम पहले से थोड़ा ज्यादा सुहाना हो गया था। तीनों पैदल चलते हुए सरजू नदी के तट पर पहुंचे। तट पर पहुंचकर माता ने सरजू के जल से पुत्र के शरीर पर लगे सिंदूर को धोने का प्रयास किया; लेकिन सिंदूर का रंग तो इतना पक्का था कि उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था। उसने परेशान होकर अपने पति की तरफ मदद के लिए ताका। अर्जुन तिग्गा इन सबसे बेखबर न जाने कहाँ खोया हुआ था। उसके चेहरे पर अद्भुत शांति के भाव थे। अर्जुन तिग्गा की आँखों के सामने सूर्य के प्रकाश में नहाया सूर्यवंश के सूर्य श्री राम के नव-निर्मित मंदिर

का स्वर्णकलश दमक रहा था। परन्तु, इस नवनिर्मित राम मंदिर के पुनर्निर्माण में पिछली आठ शताब्दियों से घटती आ रही सैकड़ों घटनाओं की एक अटूट श्रृंखला थी, जिसका एक सिरा मगध के सबसे पवित्र तीर्थस्थली गया तीर्थ में सैकड़ों वर्ष पूर्व हुई एक घटना से भी जुड़ा था।

(आठ सौ वर्ष पूर्व)
ईसवी सन, 1170
तीर्थ क्षेत्र गया, मगध, बिहार

गया तीर्थ के निरंजना नदी तट पर अवस्थित अति प्राचीन विष्णुपद मंदिर के मुख्य पुजारी माधव शास्त्री ब्रह्म कल्पित ब्राह्मण थे। उनके पूर्वजों को गयावाल तीर्थ पुरोहित कहा जाता था। माधव शास्त्री के पूर्वज अनंत काल से इस अति प्राचीन मंदिर के पुजारी रहे थे। ये गयावाल ब्राह्मण माधवाचार्य द्वारा प्रतिपादित द्वैत दर्शन का पालन करते थे और उत्तरादि मठ के अनुयायी थे।

माधव पंडा के नाम से विख्यात माधव शास्त्री भारत के सभी ब्राह्मणों में पदानुक्रम के अनुसार बड़े श्रेष्ठ माने जाते थे। यहाँ तक कि उच्च से उच्च कोटि के ब्राह्मण भी जब अपने माता पिता और पूर्वजों के श्राद्ध करने के लिए गया तीर्थ आते, उनके पांवों की पूजा करते और आशीर्वाद प्राप्त करते।

परन्तु, माधव शास्त्री के लिए सबसे बड़ी चिंता उनका अपना ही पुत्र था जो किशोरावस्था से ही वैदिक धार्मिक कर्मकांड का प्रखर आलोचक बन चुका था। वह अपने पिता की अनुमति के

बिना समीपवर्ती बौद्ध विहारों में अपना समय व्यतीत करता और वापस आकर वैदिक कर्मकांड का मजाक उड़ाता। अपने पिता की उपस्थिति में ही वह अक्सर उनके सहयोगी ब्राह्मणों को नकारा, ठग और पोंगापंथी कह कर यजमानों के समक्ष ही अपमानित करता। दिवाकर ने धीरे-धीरे गया तीर्थ के अन्य विद्वान ब्राह्मणों को भी अपने नास्तिकतावादी तर्कों से तिरस्कृत करना आरम्भ कर दिया था।

कभी वह विष्णुपद मंदिर के पुजारियों से तर्क करता कि जगत के स्वामी विष्णु के पैर इतने छोटे क्यों हैं? कभी वह पूछता ब्राह्मणों के भोजन करने से मृत-आत्माओं का पेट कैसे भरता है? अगर कोई उसकी बातों का विरोध करता तो वह मार-पीट पर उतर आता। पिता उसे समझाते किन्तु दिवाकर की सनातन धर्म के प्रति घृणा निरंतर बढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे माधव शास्त्री के लिए उसकी गतिविधियां असह्य होने लगीं।

बुद्ध पूर्णिमा के दिन वह अपने पिता के पास गया और अपना फैसला सुनाया, “मैं आज महाबोधि मठ में बौद्ध धर्म ग्रहण करने जा रहा हूँ।”

हतप्रभ माधव शास्त्री ने पूछा, “क्या यह तुम्हारा अंतिम फैसला है।”

दिवाकर ने ‘हाँ’ की मुद्रा में अपना सिर हिलाया और बोला, “ये पिंडदान, ये राम, कृष्ण, विष्णु, शिव जैसे कपोल-कल्पित देवताओं की मनगढ़ंत कहानियां मुझे कुपित करती हैं।”

“तुम प्रभु राम, कृष्ण, विष्णु, शिव इत्यादि देवताओं के अस्तित्व पर सवाल खड़े कर सकते हो परन्तु उनके आदर्श और आचरण पर नहीं। मत पूजो उन्हें, लेकिन उनके आचरण से सीख तो ले सकते हो।”, पिता ने समझाया किन्तु हठी और उदंड दिवाकर के चेहरे के भाव अपरिवर्तित रहे।

उनकी सलाह सुनकर दिवाकर कुटिल मुस्कराहट के साथ बोला-“जानता हूँ, आप भयभीत हैं कि आपकी मृत्यु के उपरांत आपका अंतिम संस्कार कौन करेगा, आपकी मुक्ति के लिए आपका पिंडदान कौन करेगा। लेकिन आप बे-वजह चिंतित न हों, शरीर जब

मर जाता है तो कुछ भी नहीं बचता। “भस्मीभूतस्य देहस्य पुनः कुतः आगमनम्.....” काल पर्यन्त तक सुख से जीवन यापन करें। क्योंकि देह (शरीर) का विनाश ही मोक्ष है। वहाँ मृत्यु के बाद कुछ भी प्रत्यक्ष गोचर नहीं है।”

“तू जो कह रहा है वह भौतिकवादियों का दर्शन है। वह बुद्ध का दर्शन नहीं है। तुझे पता नहीं बुद्ध कौन थे। वे इस भूमि पर इन भौतिकतावादी दर्शनों से पैदा हुई सामाजिक अनैतिकताओं और अधर्म का नाश करने के लिए ही अवतरित हुए थे।”, पिता ने पुत्र को पुनः समझाया।

“.....वाह! आप भी बुद्ध को विष्णु का दसवां अवतार मानते हैं? जो बुद्ध ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते थे, आपने उन्हें ही ईश्वर बना दिया।” दिवाकर अमर्यादित भाव से हँसा।

“पुत्र, यकीनन बुद्ध नास्तिक थे, लेकिन, नास्तिक होने का तात्पर्य ईश्वर से नहीं बल्कि वेद की सत्ता में विश्वास नहीं करने से है। वे निसंदेह धर्म की स्थापना करने के लिए इस धरती पर आये थे।”, माधव शास्त्री ने उत्तर दिया।

“इसका मतलब यह कि उन्होंने वैदिक धर्म को अस्वीकार कर उसके विकल्प के रूप में बौद्ध धर्म की स्थापना की। अगर यह सत्य है तो आप भी मेरे साथ चलकर सनातन धर्म त्याग कर बौद्ध धर्म की दीक्षा क्यों नहीं ले लेते।” दिवाकर की भाषा में व्यंगात्मकता थी।

पुत्र की बातें सुनकर माधव शास्त्री सहज भाव से हँसे, “धर्म कोई संगठन या सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि नैतिक-सामाजिक मूल्य और कर्तव्य है। महाराज मनु ने मानव धर्म के दस लक्षण बताये हैं:

‘धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥’

(धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (अन्तरंग और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या

(अधिक से अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन वचन कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना); ये दस मानव धर्म के लक्षण हैं। मीमांसा दर्शन का प्रधान विषय 'धर्म' ही है।”,

एक क्षण साँस लेने के लिए रुकने के बाद वह बोले, “पुत्र, धर्म जिज्ञासा वाले प्रथम सूत्र, 'अथातो धर्मजिज्ञासा' के बाद द्वितीय सूत्र में ही सूत्रकार ने धर्म का लक्षण बतलाया है, “चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः।”

“क्या यह वही मनु महाराज तो नहीं, जिन्होंने कहा था कि शूद्रों का जन्म ब्रह्मा के पैरों से हुआ है?”, दिवाकर उपेक्षा के भाव के साथ हंसा।

“पुत्र, पतित पावनी पवित्र गंगा का जन्म भी तो विष्णु के पैरों से ही हुआ था। वामन पुराण के अनुसार जब भगवान विष्णु ने वामन रूप में अपना एक पैर आकाश की ओर उठाया तब ब्रह्मा जी ने भगवान विष्णु के चरण धोकर जल को अपने कमंडल में भर लिया। इस जल के तेज से ब्रह्माजी के कमंडल में गंगा का जन्म हुआ।”, पिता ने पुत्र के मन से संशय हटाने की कोशिश की। लेकिन, पुत्र ने पिता के ज्ञान को चुनौती दी।

“आप मुझे यह बता दीजिये कि बुद्ध अवतारी कैसे हो गए? अवतारी तो चमत्कार करते हैं। बुद्ध तो साधारण मानव थे।”

“किसने कहा, बुद्ध ने चमत्कार नहीं किये? “यह मिथ्या तर्क कि बुद्ध चमत्कार नहीं करते थे। उन्होंने कभी भी अपनी चमत्कार करने की शक्ति से इनकार नहीं किया। बुद्ध ने पहला चमत्कार प्राचीन श्रावस्ती में किया था। बुद्ध के एक शिष्य कश्यप ने एक व्यक्ति सामने ऐसा चमत्कार दिखाया कि वह हतप्रभ रह गया और उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। लेकिन, इस घटना के बाद बुद्ध ने अपने शिष्यों को चमत्कार करने से रोक दिया। बुद्ध के इस फैसले से आजीविकों और दूसरे नास्तिक सम्प्रदायों के प्रमुखों को लगा कि बुद्ध चमत्कारों की चुनौती से बचने के लिए बहाना बना रहे हैं। अतः उन्होंने बुद्ध को चमत्कार करने की चुनौती दी। उन्होंने सोचा होगा कि बुद्ध मना कर देंगे और वे उनके अनुयायियों को अपने धर्म की

तरफ़ खींच लेंगे। लेकिन, बुद्ध ने दो बार चमत्कार किये, एक कपिलवस्तु और दूसरा श्रावस्ती में।”, माधव शास्त्री एक बार पुनः साँस लेने के लिए रुके फिर कहने लगे, “पहले चमत्कार के दौरान बुद्ध के कंधों से लपटें निकलने लगीं और पांवों से पानी फूट पड़ा था। फिर अचानक बुद्ध के कंधों से लपटों की जगह पानी और पांवों से पानी की जगह लपटें निकलने लगीं और बुद्ध के शरीर से विभिन्न प्रकार के रंग निकलने लगे, जिसे देखकर वहां मौजूद लोग चकित रह गए। इस बीच बुद्ध की कई छवियां बन गईं, कुछ खड़ी हुई थीं और कुछ चल रही थीं। ये छवियां धम्म का प्रचार कर रही थीं। बुद्ध के प्रतिद्वंदी ये सब देखकर भौचक्के रह गए और जब उन्होंने चमत्कार का जवाब देने की कोशिश की तो वे हिल भी नहीं सके। फिर अचानक बारिश होने लगी लेकिन बस वो ही लोग भीगे जो भीगना चाहते थे। इससे वहां एकत्र लोग और भी प्रभावित हो गए। बारिश के बाद तेज़ हवा बहने लगी जिसमें सभी छह प्रतिद्वंदी और उनके मंडप उड़ गए। शर्म के मारे एक को छोड़, पांच प्रतिद्वंदियों ने आत्महत्या कर ली। इसके बाद बुद्ध ने अपने ही हमशक्ल के साथ धम्म पर वाद-विवाद किया। इस चमत्कार के बाद लोगों को लगा कि बुद्ध ही असली संत, सच्चे मानव और गुरु हैं। इस घटना के बाद 90 हजार लोगों ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। महायान परंपरा के अनुसार चमत्कार के बाद बुद्ध अपने वर्षावास के तीन महीने के लिये स्वर्ग की ओर निकल पड़े ताकि अपनी मृत माता अभधम्म को दीक्षा दे सकें ताकि वह भी स्वर्ग जा सकें। लेकिन बुद्ध नहीं चाहते थे कि उनके शिष्य किसी को चमत्कारों से प्रभावित कर उन्हें बौद्ध धर्म अपनाने के लिये प्रेरित करें।”

एक बार फिर वह असहाय पिता साँस लेने के लिए रुका और फिर अपनी बात कहने लगा, “माना जाता है कि ये भी ऐसा कर्म है जो हर बौद्ध को चमत्कार पूरा होने पर करना होता है। इसके बाद बुद्ध स्वर्ग से नीचे उतरे और उनके साथ ब्रह्मा और इंद्र थे। बुद्ध की वजह से संकिसा (उत्तर प्रदेश) में भूस्खलन हो गया। लेकिन, उन्होंने अपने शिष्यों को भविष्य में इस तरह के चमत्कार न करने की

हिदायत दी। उन्होंने कहा- “सावधान! मैं तुम लोगों को इन चमत्कारों का प्रदर्शन तथा अभ्यास के लिए बार-बार मना करता हूँ। यदि तुम्हें इन मोहिनी वशीकरण, आकर्षण और अन्यान्य मंत्र-यंत्रों के चमत्कारों से जनता को प्रलोभना देना ही इष्ट है, तो मैं सुस्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि अब तक तुम लोगों ने धर्म के संबंध में कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की। यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो इन चमत्कारों से बचकर केवल सदाचार का अभ्यास करो।’ अतः बुद्ध की अलौकिक शक्तियाँ असंदिग्ध हैं”, माधव शास्त्री ने अपनी बात पूरी की।

पिता की बातें सुनकर दिवाकर जोर से हंसा और बोला- “आप हार गए! आपने अभी-अभी स्वीकार किया है कि बुद्ध की महानता असंदिग्ध है। आप मेरे साथ चलिए। हम पिता-पुत्र एक साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा लेंगे।” उसने आगे कहा, “बौद्ध मठ अद्भुत स्थान है। वहाँ किसी प्रकार की कोई बंदिश नहीं। जीवन के सभी सुख वहाँ हैं। राजाश्रय है। अध्ययन है, प्रवचन है, योग है और अच्छा भोजन..... सबकुछ ! कहाँ यहाँ का कठोर ब्राह्मण जीवन और कहाँ वहाँ का राजाश्रय प्राप्त सुखमय जीवन।”

माधव शास्त्री बोले, “तू वहाँ ‘बुद्ध’ या ‘योग’ के लिए नहीं बल्कि ‘भोग’ और ‘भौतिक’ सुख की कामना लिए जा रहा है। तुझे मांस, मदिरा, स्त्री और व्यभिचार की लिप्सा वहाँ खिंच रही है। संयमित और पवित्र जीवन जीने वाले किसी धर्मनिष्ठ ब्राह्मण के लिए वह जगह उपयुक्त नहीं है।”

“अब..... आप कहना चाहते हैं कि बुद्ध का मार्ग, मदिरा, स्त्री और व्यभिचार का मार्ग है?”, दिवाकर ने टोका।

नहीं पुत्र! बुद्ध का नहीं, बल्कि वर्तमान बौद्ध मठों और उनके मठाधीशों की बात कह रहा हूँ। बुद्ध जानते थे कि भविष्य में ये लोग ऐसा ही करेंगे। इसलिये उन्होंने अपने शिष्यों को इन झूठे बौद्ध मतावलंबियों के विरुद्ध आगाह किया था। लेकिन, होनी को कौन टाल सकता है? स्वयं भगवान् भी नहीं !”, माधव पंडा ने उदासी भरे शब्दों में उत्तर दिया।

“आपके जैसे विद्वान और ब्रह्मज्ञानी के मुख से बौद्ध भिक्षुओं के प्रति इतनी घृणा शोभा नहीं देती। फल्यु के घाट पर देखिये आपके ही सगे-सम्बन्धी ब्राह्मण किस निर्लज्जता से गरीब और बेबस यजमानों को गिध्द की तरह नोंच रहे हैं। आप उनके विरुद्ध कुछ क्यों नहीं कहते?”, दिवाकर ने प्रश्न किया।

माधव शास्त्री ने सहमती की मुद्रा में सिर हिलाते हुए कहा, “महान विचारों की हत्या उनके मानने वाले ढोंगी समर्थक ही करते हैं। जैसे बुद्ध के विचारों की हत्या उनके शिष्यों ने की है।”

“यह तर्क आपके महान सनातन धर्म को मानने वालों के प्रति सटीक बैठता है, किन्तु बुद्ध के शिष्यों के प्रति नहीं। बुद्ध के शिष्य तो बुद्ध के ही प्रतिरूप हैं। नैतिकता और सदाचार उनकी रगों में रक्त की तरह बहता है”, दिवाकर उनकी आँखों में आँखें डालता हुआ हंसा।

“क्या वैसे ही जैसे तुम्हारी धमनियों में बह रहा है?” माधव शास्त्री हँसे, “क्या तुम्हें पता है, बुद्ध के जीवन के अंतिम दिन कैसे बीते थे? उनकी मृत्यु कैसे हुई थी? और उनकी मृत्यु के बाद क्या हुआ था? उनके शिष्यों का आचरण कैसा था?”

“अब ये मनगढ़ंत कहानी भी आप सुना ही दीजिये, अन्यथा आप कहेंगे, घर छोड़ कर जाते हुए पुत्र ने अपने पिता की अंतिम आकांक्षा भी पूरी नहीं की”, दिवाकर के शब्दों में तिरस्कार के भाव थे।

इतना अपमान सहकर शायद कोई और होता तो चुप हो जाता, लेकिन माधव शास्त्री समस्या की गंभीरता को समझ रहे थे। उन्हें भान था कि उनका पुत्र गलत रास्ते पर जा रहा था। एक पिता के रूप में उन्होंने दिवाकर को रोकने का अंतिम प्रयास किया।

माधव शास्त्री ने कहना शुरू किया, “अस्सी साल के हो चुके बुद्ध उस वर्ष बारिश से पहले राजगृह में थे। वहां से यात्राएं करते वैशाली के निकट बेल्ग्राम में उन्होंने वर्षावास किया। यात्रा थका देने वाली थी। यहां वे अस्वस्थ हो गये। स्वस्थ होने पर वे फिर अम्बग्राम, भंडग्राम, जम्बूग्राम, भोगनगर आदि की यात्रा करते पावापुरी नामक

ग्राम में पहुंचे। पावापूरी में उन्होंने चुंद कम्मारपुत्र नामक एक लोहार के आम्रकुञ्ज में अपना निवास बनाया। चुंद उनके लिए मीठे चावल, रोटी व जंगली छत्रक पकाकर ले आया।

कुछ पल साँस लेने के लिए रुकने के बाद उन्होंने कहना जारी रखा—“भोजन ग्रहण करने के कुछ समय उपरांत बुद्ध ने अपने उदर में भीषण पीड़ा का अनुभव किया। बुद्ध को पल भर में भान हो गया कि उनका जीवन अब समाप्त होने वाला है। उन्होंने करुणा भरी दृष्टि से चुंद की तरफ देखा। बुद्ध आंखों में असीम शांति थी। लेकिन, अपराधबोध से ग्रस्त चुंद उनसे आंखें न मिला पाया और कमरे से बाहर निकल गया। उसके जाने के उपरांत उन्होंने अपने शिष्य आनंद से धीमें स्वर में पूछा, ‘क्या तुमने यह भोजन मेरे अलावा किसी अन्य को भी परोसा था?’ आनंद ने उत्तर दिया, “तथागत, आपने मना किया था, कैसे परोसता?”

बुद्ध ने असीम शांति के कारण अपनी आंखें बंद कर ली।

किसी अनहोनी की आशंका से भयभीत आनंद ने धीरे से पूछा—‘तथागत, क्या चुंद ने आपको विष दिया है।’ बुद्ध ने कोई उत्तर नहीं दिया।”

माधव पंडा ने कहना जारी रखा, “पुत्र, मृत्यु शैया पर लेटे बुद्ध के समक्ष दो विकल्प रहे होंगे। एक, मृत्यु को अंतिम सत्य मान इसे सहज स्वीकार कर लेना, जो उनकी खुद की शिक्षा थी, और दूसरा, चुंद को अपराधी घोषित कर उसे दंड दिलवाना। महापरिनिर्वाण के शीर्ष पर खड़ा एक महामानव भी कभी कभी अपने एक गलत निर्णय से ही फिसल कर घनघोर अंधेरे में जा गिरता है। बुद्ध अवगत थे कि अगर उन्होंने घोषणा कर दी कि उनके स्वयं के शिष्य ने ही उन्हें विष दिया है तो उनकी शिक्षा पर प्रश्न चिन्ह खड़े हो किये जायेंगे। बौद्ध धर्म का त्वरित पतन हो जायेगा, इसलिए जरूरी है कि मृत्यु के कारण को हमेशा के लिए पिटारे में बंद कर दिया जाए। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद को अपने निकट बुलाया, फिर धीमें स्वर में बोले—‘आनंद, मृत्यु तो निश्चित है। मेरी मृत्यु का समय आ चुका है। परंतु चुंद को मेरी मृत्यु का दोषी मत मानना मैं अपनी

उम्र जी चुका हूँ। मैं तुम्हारा अंतिम गुरु हूँ, मेरे बाद तुम्हारा कोई गुरु न होगा। अपना दीपक स्वयं ही बनो। अपने अंदर के प्रकाश से बाहर का रास्ता खोजो।' और फिर उन्होंने असीम वेदना के कारण अपनी आंखें बंद कर ली। उनका कथन सुनकर भयातुर आनंद बाहर जाने के लिए मुड़ा, लेकिन तभी बुद्ध ने अपनी आंखें खोली और बोले- 'आनंद इस संधारी के चार तह करके जमीन पर बिछाओ। मैं थक गया हूँ, लेटूंगा।' माधव पंडा कुछ पल रुकने के बाद दिवाकर को संबोधित करते हुए आगे बोले, "लेकिन, शारीरिक पीड़ा ने बुद्ध को सोने नहीं दिया। वे बेचैन हो उठे। उन्होंने आनंद से कहा, 'आनंद, मुझे कुकुत्था नदी तक ले चलो। आनंद, अन्य शिष्यों की मदद से उन्हें किसी प्रकार कुकुत्था नदी के तट पर ले कर आया। बुद्ध ने कुकुत्था नदी के जल में देर तक स्नान किया, लेकिन शरीर की जलन कम न हुई। उसके बाद वे वहीं रेत पर चीर बिछा कर लेट गए। कुछ देर आराम करने के बाद वह ताकत बटोर कर चलने लगे। रास्ते में उन्होंने हिरण्यवती नदी पार की।

'आनंद तुम्हें पता है?, 'मेरा जन्म दो शाल वृक्षों के मध्य हुआ था, अतः अन्त भी दो शाल वृक्षों के बीच में ही होगा। अब मेरा अंतिम समय आ गया है", बुद्ध के ये अंतिम शब्द थे। और उसके कुछ देर बाद उन्होंने साल के दो वृक्षों के मध्य अपना अपना जीवन त्याग दिया। बुद्ध भली-भांति जानते थे कि अगर इस दुनिया को पता चल गया कि उनकी मृत्यु उनके शिष्य के द्वारा दिए गए विष के कारण हुई है तो उनके धर्म, उनकी शिक्षा और उनके शिष्यों के आचरण पर बड़े गंभीर सवाल उठेंगे, और ये प्रश्न बौद्ध धर्म को इस धरती से खत्म कर देंगे। अतः बुद्ध ने धम्म के लिए मृत्यु को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बौद्ध धर्म के लिए अपना प्राण देने वाले प्रथम व्यक्ति स्वयं बुद्ध थे।

कुछ पल की खामोशी के बाद माधव शास्त्री बोले, "सुनों दिवाकर, अन्य धर्मगुरुओं की भांति बुद्ध ने भी तमाम उम्र बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए राजआश्रयों की तलाश की। राज-आश्रय के बिना धर्म का त्वरित विस्तार संभव नहीं होता है। लेकिन, राज-

आश्रय ही धर्म को प्रदूषित कर देता है। राजा धर्म को एक कोमल अस्त्र की तरह उपयोग करते हैं, जिसकी मदद से वे अपने भीषण रक्तपात और अत्याचार को धर्म-संगत बना सकें।

बुद्ध के नाम का उपयोग उस समय के सभी राजाओं ने भरपूर किया था। बुद्ध की मृत्यु के बाद भी ये राजे-महाराजे अपने लोभ से बचे नहीं रहे। वे सभी अपने राज्य में बुद्ध के अवशेषों पर बौद्ध मठ बनाकर जनता का विश्वास जीतना चाहते थे। इसीलिए उनकी मृत्यु के छठे दिन बुद्ध के प्रमुख शिष्य राजाओं के बीच उनके अवशेषों के लिए युद्ध छिड़ गया। बुद्ध जानते थे कि महान गुरुओं के विचारों की हत्या उनके शिष्यों के द्वारा ही होती है। वे जानते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनके शिष्यों में बुद्ध के पद के लिए संघर्ष छिड़ जाएगा। इसलिए उन्होंने शिष्यों से कहा कि मेरी मृत्यु के बाद तुम्हारा कोई अन्य गुरु नहीं होगा।” इतना कहकर माधव चुप हो गये और अपने पुत्र की तरफ आशा भरी नज़रों से देखा।

किन्तु, पिता की बातों को नजरंदाज करते हुए दिवाकर एक विद्रूप हंसी के साथ बोला, “आप बुद्ध को विष्णु का दसवां अवतार सिद्ध करने के लिए और कितने कुतर्क रचेंगे। तथागत ने अंतिम भोजन के रूप में जंगली कवक की स्वादहीन तरकारी नहीं, बल्कि सुकर का स्वादिष्ट नर्म मांस खाया था। आप यह कैसे स्वीकार करेंगे कि विष्णु के दसवें अवतार ने सुकर का मांस खाया था?.....इसलिए आप सुकर का नर्म मांस की जगह जंगली कवक कह रहे हैं।”

एक पिता ने अपने पुत्र को दुखी स्वर में समझाया-‘ दिवाकर, दूसरों के दुःख से दुखी होने वाला, सभी जीवों के प्रति दया का भाव का उपदेश देने वाला और समस्त विश्व में अहिंसा का सन्देश देने वाला मांसाहारी नहीं हो सकता। यह भ्रम तो उनकी मृत्यु के उपरान्त बौद्ध मठों ने अपने कुकृत्यों को धार्मिक आवरण प्रदान करने के लिए फैलाया था। इसी मुखौटे की आड़ में इन बौद्ध मठों में कई प्रकार व्यभिचार होते हैं। अब इन बौद्ध मठों में पाखंडी वाममार्गी और वज्रयान बौद्ध तांत्रिकों का प्राबल्य है। पंच मकार के आध्यत्मिक

अर्थ को समझने के बदले उसके भौतिक पक्ष का आनंद लेने वाले ये कुटिल पाखंडी भिक्षुक हैं। इनकी समस्त दिनचर्या मद्य, मांस, मत्स्य मुद्रा, मैथुन के इर्दगिर्द ही घूमती है। पुत्र ! तुम समझ लो, मैं इन मठों का विरोधी क्यों हूँ और तुम्हें जाने से क्यों रोक रहा हूँ?”

परन्तु दिवाकर ने इतने पर भी अपनी जिद नहीं छोड़ी, तब माधव शास्त्री कुपित स्वर में बोले- “जाओ दिवाकर मैं तुम्हें पितृ ऋण से मुक्त करता हूँ। अब तुम स्वतंत्र हो। मुझे मोक्ष के लिए तुम्हारे पिंडदान की जरूरत नहीं पड़ेगी।”

“क्या मेरे वृद्ध पिता इस उम्र में पुनः विवाह कर पुत्र उत्पन्न करेंगे।”, दिवाकर ने निर्लज्जता से भरे व्यंग के साथ प्रश्न किया।

पुत्र को त्याग देने बाद माधव शास्त्री के अन्दर का पिता मृत हो गया था। दिवाकर की व्यंग भरी कुटिलता का उत्तर मध्वाचार्य का शिष्य माधव शास्त्री ने दिया-“अरे नराधम, तेरा धर्मांतरण निःसंदेह मेरे वंश का स्थायी धर्मान्तरण नहीं होगा। यकीनन आज तेरी नास्तिकता तुझे बौद्धमठों की तरफ ले जा रही है, लेकिन, जैसे ही तुम्हारी किसी संतति में आस्तिकता जागेगी, वह बुद्ध को ईश्वर मानकर उनकी मूर्ति के समक्ष नतमस्तक हो जायेगा, और पुनः अपने पूर्वजों की तलाश में सनातन धर्म की तरफ वापस दौड़ेगा। फिर एक दिन इसी फलु के तट पर मेरा कोई वंशज मेरे मोक्ष के लिए मेरा पिंडदान करेगा।!! तब तुम्हारे सारे तर्क अदृश्य हो जायेंगे; और तब प्रेत योनी में भटकती तेरी अतृप्त आत्मा को भी मुक्ति मिल जाएगी।

उत्तर में दिवाकर चुनौती भरे स्वर में बोला- “मुझे पता है मेरा वह कथित वंशज फलु के तट पर अपने पूर्वजों का पिंडदान करने नहीं आएगा..... किन्तु मैं एक दिन वापस लौटूंगा, फलु के तट पर धूर्त ब्राह्मणों के इस पिंड-पाखण्ड को खत्म करने!”

“मेरा पुत्र तो मर चुका है, परन्तु मैं एक छद्म बौद्ध का इन्तजार करूँगा। तू कुतर्की है, नीच है, मुझे आशंका है कि बुद्ध की करुणा और अहिंसा के उपदेश भी तेरे अंतर्मन की कालिमा को घो

नहीं पाएंगे”, इसके बाद माधव शास्त्री ने उसकी तरफ से अपना मुख फेर लिया ।

थोड़ी देर बाद उन्होंने वापस मुड़ कर देखा, दिवाकर घर के दरवाजे पर अब भी खड़ा था । “अब क्या बचा है? जाते क्यों नहीं?”, उन्होंने कुपित होकर पूछा ।

“मैं अपनी पत्नी का इंतजार कर रहा हूँ ।”

उसी समय घर के अंदर से एक स्त्री की मद्धिम किन्तु दृढ आवाज गूँजी- “जिस धर्म को साक्षी मानकर मैंने आपको अपना पति माना था, आपने उसी धर्म का त्याग कर दिया तो यह विवाह सम्बन्ध भी समाप्त हो गया । मैं आपके सुख दुःख में सहभागी हो सकती हूँ, लेकिन आपके अधर्म में नहीं ।”

अपनी पत्नी की बातें सुनकर दिवाकर गुस्से से पैर पटकता वहां से हमेशा के लिए चला गया ।

बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के बाद दिवाकर अब शीलभद्र बन गया । गयातीर्थ के स्थानीय बौद्ध मठों को दिवाकर में काफी संभावनाएँ दिख रही थी । उन्होंने दिवाकर को नालंदा स्थित बौद्ध विश्वविद्यालय में बौद्ध दर्शन की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया । ब्राह्मण कुल में जन्में शीलभद्र को औषाधि विज्ञान सर्वाधिक रुचिकर लगा । धीरे-धीरे शीलभद्र को ‘भैषज्यगुरु के शिष्य’ की उपाधि मिल गयी और उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गयी ।

इधर दिल्ली पर विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं का अधिपत्य हो चुका था । लेकिन इसी दौरान बिहार को अपने कब्जे में लेने वाला कमांडर बख्तियार खिलजी गंभीर रूप से बीमार पड़ गया । उसके सारे हकीम हार गए परंतु बीमारी का पता नहीं चल पाया । खिलजी दिनों दिन कमजोर पड़ता गया और उसने बिस्तर पकड़ लिया । उसे लगा कि अब उसके अंतिम दिन आ गए हैं ।

एक दिन उससे मिलने आए एक बुजुर्ग ने सलाह दी कि नालंदा महाविद्यालय के एक वैद्य शीलभद्र से एक बार ईलाज करवा लें, वे आपको स्वस्थ कर देंगे। परन्तु, खिलजी तैयार नहीं हुआ। उसने कहा कि मैं किसी काफ़िर के हाथ की दवा नहीं ले सकता हूँ, चाहे मर क्यों न जाऊँ!! लेकिन अंततः वह अपने कमांडरो की जिद के आगे झुक गया।

शीलभद्र उसके इलाज के लिए जब उसके खेमे में आया तो खिलजी ने उनसे कहा कि दूर से ही देखो, मुझे छूना मत। क्योंकि तुम काफ़िर हो और दवा मैं लूंगा नहीं। शीलभद्र जी ने उसका चेहरा देखा, शरीर का मुआयना किया, बलगम से भरे बर्तन को देखा, सांसों के उतार चढ़ाव का अध्ययन किया और बाहर चला गया। कुछ देर बाद वह फिर लौटा और पूछा, “सुलतान कुरान पढ़ते हैं?” उत्तर मिला, “दिन रात पढ़ते हैं!”

पन्ने कैसे पलटते हैं?

उंगलियों से जीभ को छूकर सफे पलटते हैं!!

इसके बाद शीलभद्र जी ने खिलजी को एक कुरान भेंट किया और कहा कि आज से आप इसे पढ़ें। इधर खिलजी ने शीलभद्र द्वारा दिए गए कुरआन को पढ़ना आरम्भ किया और उधर दूसरे दिन से ही खिलजी की तबीयत ठीक होने लगी और एक हफ्ते में वह पूरी तरह स्वस्थ हो गया। दरअसल, शीलभद्र ने कुरान के पन्नों पर दवा लगा दी थी, जिसे उंगलियों से जीभ तक पढ़ने के दौरान शरीर के अन्दर पहुंचाने का अनोखा तरीका अपनाया गया था।

इस चमत्कारिक स्वास्थ्य लाभ से खिलजी अचंभित था, मगर उससे भी ज्यादा वह ईर्ष्या और जलन से मरा जा रहा था कि आखिर एक काफ़िर वैद्य ईमानवाले हकीमों से ज्यादा काबिल कैसे हो गया? उसने अपने अन्दर की ईर्ष्या और जलन को छिपाते हुए एक दिन शीलभद्र से प्रश्न किया, “किस बुत की इबादत करते हो?”

“हम मूर्तियों की पूजानही करते!” बौद्ध शिक्षक शीलभद्र ने धीमे स्वर में उत्तर दिया। फिर अचानक उसे न जाने क्या सुझा, शीलभद्र ने दुनिया भर की करुणा अपनी आँखों में भरते हुए

बख्तियार खिलजी की तरफ देखा और चापलूसी भरे शब्दों में बोला, “हुजुर, हम बौद्ध, इन सनातनियों से अलग हैं। हम उनकी तरह मूर्तियों की पूजानही करते। यहाँ से कुछ फासले पर उनका बहुत बड़ा तीर्थ है-गया। वहाँ वर्षभर दुनिया भर से लाखों हिन्दू बुतपरस्ती करने आते हैं।”

बख्तियार खिलजी की आँखों की चमक दुगुनी हो गई। उसने अपनी खुशी छिपाते हुए अपने प्रिय सुबाहदार औलिया खान की तरफ देखा, “वाह ! अपना हकीम तो बुतपरस्त नहीं है। और इशारों में हमें कितनी बढ़िया जानकारी दे रहा है।”

इसके बाद बख्तियार खिलजी ने अपने सूबेदार औलिया खान को अपने 500 घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी के साथ पितृतीर्थ गया कूच करने और वहाँ के मंदिरों को नेस्तनाबूद करने का आदेश दे अपने हरम में चला गया।

औलिया खान अपने पांच सौ घुड़सवार सैनिकों के साथ मात्र कुछ घंटे में पाटलिपुत्र से गया तीर्थ पहुंचा और अपने घुड़सवार सैनिकों की मदद से अचानक ही विष्णुपद मंदिर पर हमला कर भयानक नरसंहार आरम्भ दिया। मिनटों में फल्गु की रेत विष्णु भक्त नर-नारियों के रक्त से लाल हो गई।

इस भयानक नरसंहार को रोकने के लिए विष्णुपद मंदिर के पुजारियों ने माधव शास्त्री के नेतृत्व में ‘हर हर महादेव!’ के नारे के साथ मुसलमान सैनिकों से लोहा लेना करना आरम्भ कर दिया। उनके पास हथियार के रूप में लाठियों और पथ्थरों के अलावा कुछ भी नहीं था।

माधव शास्त्री इस लड़ाई का नेतृत्व कर रहे थे। उनकी आक्रमकता और ललकार ने पुजारियों में नया जोश भर दिया जिससे, खिलजी के खेमे में कोहराम मचा दिया। लेकिन, प्रशिक्षित और अनुभवी सूबेदार औलिया खान ने जबरदस्त व्यूह रचना कर माधव शास्त्री को घेर लिया, और उसके सैनिकों ने माधव शास्त्री का सिर धड़ से अलग कर दिया। अब उनका इरादा माधव शास्त्री के सिर को भाले की नोंक पर टांग कर युद्धरत हिन्दू पुजारियों में

आतंक फैलाना था। परन्तु, माधव शास्त्री के दोनों अंगरक्षक पुजारियों ने सूबेदार औलिया खान के सैनिकों की मंशा भांपते हुए जल्दी जल्दी माधव शास्त्री के शरीर को अपने कब्जे में ले युद्ध क्षेत्र से निकल गए, और उनका पीछा करते हुए खिलज़ी के सैनिक जब तक उन्हें पकड़ पाते तबतक उन्होंने से फल्गु नदी के किनारे माधव शास्त्री के मृत शरीर को समाधि देकर स्वयं भी समाधि ले ली।

माधव शास्त्री के मारे जाने की खबर बिजली की तरह हिन्दू खेमे ने फैल गई। लेकिन, इस खबर के बाद भीड़ और आक्रमक हो गई, जिसके फलस्वरूप चारों ओर से बख्तियार खिलज़ी की सेना पर भयानक हमले होने लगे।

इस भयानक युद्ध में स्थानीय ग्रामीण हिन्दू जनता भी मंदिर के रक्षकों का साथ देने लगी। ग्रामीणों की आक्रमकता के सामने बख्तियार खिलज़ी के सैनिकों के पैर उखड़ गए। और वे मैदान छोड़ कर भागने लगे।

इस भयानक नरसंहार में बाद दिवाकर अर्थात् शीलभद्र की पत्नी अपने अपने पुत्र के साथ गया तीर्थ से अदृश्य हो गई और यह मान लिया गया कि पंडित माधवशास्त्री का वंश खत्म हो गया, और उसकी वह भविष्यवाणी कि एक दिन उसका वंशज उसका श्राद्ध करने फल्गु के तट पर आएगा, बीते जमाने की बात हो गई।

एक तरफ जहाँ विष्णुपद मंदिर में भयानक युद्ध चल रहा था तो निरंजना नदी के दूसरी तरफ विशाल महाबोधि मंदिर के प्रांगण में आसन्न खतरे से लापरवाह, दुनियावी चुनौतियों से भागकर मन की शांति तलाश रहे बौद्ध श्रमणों के हृदय में कोई बेचैनी नहीं थी। जल्दी ही खिलज़ी घुड़सवारों के दस्ते ने प्राचीन महाबोधि मंदिर को अपना अगला निशाना बनाया। लेकिन, वहाँ मौजूद बौद्ध भिक्षुओं ने विष्णुपद मंदिर के पुजारियों की भांति इन सैनिकों का प्रतिकार करना

उचित नहीं समझा। वे नतमस्तक हो, हाथ जोड़ कर तब तक खड़े रहे जबतक उनके सिर धड़ से अलग न हो गए। इसके बाद जिन्दा बचे अधिकतर बौद्ध भिक्षुओं ने बिना किसी प्रतिरोध के इस्लाम धर्म कबूल कर अपनी जान बचा ली।

इस नरसंहार की खबर जब आस-पास के बौद्ध विहारों तक पहुंची तो वहां के कुछ बौद्ध धर्मावलम्बियों ने बुद्ध की प्राचीन मूर्तियों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से आस-पास के ग्रामीण इलाकों में मौजूद तालाबों, कूपों और खेतों में छिपा दिया और स्वयं वृहद् हिन्दू समाज में हमेशा के लिए विलीन हो गए। बाकि बचे बौद्ध धर्मावलम्बियों ने महाबोधि मंदिर के बौद्ध भिक्षुओं की भांति बिना किसी प्रतिरोध के इस्लाम धर्म कबूल कर अपनी जानें बचा ली।

महाबोधि मंदिर का विध्वंस कर सूबेदार औलिया खान जब वापस पटना पहुंचा तो बख्तियार खिलजी ने उसका स्वागत किसी विजेता की तरह किया। लेकिन, सूबेदार औलिया खान के अन्दर अपने सैकड़ों सैनिकों के मारे जाने की गहरी टीस थी। उसका विष्णुपद मंदिर का अभियान असफल रहा था और हिन्दुओं ने उसका मनोबल बुरी तरह तोड़ दिया था। उसे सबसे अधिक गुस्सा श्रमण शीलभद्र पर था जिसने बख्तियार खिलजी को विष्णुपद मंदिर पर हमले के लिए उकसाते समय मंदिर के पुजारियों और स्थानीय हिन्दू जनता की वीरता की चर्चा नहीं की थी।

अगले दिन सूबेदार औलिया खान जब दोपहर की नमाज पूरी कर उठा, तभी दोपहर के भोजन के लिए बख्तियार खिलजी के शिविर से बुलावा आ गया। वह तैयार होकर जब बख्तियार खिलजी के खेमे में पहुंचा तो पाया, तमाम तरह के माँसाहारी भोजन मेज पर सजे हुए थे। सुल्तान के ठीक सामने बैठा श्रमण शीलभद्र के चांदी की एक तश्तरी में भुने मांस का टुकड़ा और कुछ फल लेकर बैठा उसके आने का इन्तजार कर रहा था।

श्रमण शीलभद्र के भोजन में भुना मांस देख सूबेदार औलिया खान चौक पड़ा। सूबेदार औलिया खान की पैदाइश भले ही तुर्किस्तान की रही हो, लेकिन उसने भारत में बहुत लम्बा समय व्यतीत किया था और वह यहाँ के लोगों के खान-पान और रहन-सहन से भली भांति अवगत था।

उसने चकित होकर विनम्रतापूर्वक भगवा वस्त्रधारी श्रमण शीलभद्र से पूछा- “आप मांस -मदिरा का सेवन भी करते हैं”?

श्रमण शीलभद्र ने विनम्रता के साथ उत्तर दिया- “हमारे धम्म में वाराह, बकरी और भैस का मांस वर्जित नहीं हैं। तथागत ने तन की शुद्धता से ज्यादा हृदय की शुद्धता पर ध्यान देने का उपदेश दिया है।”

सुबाहदार औलिया खान ने चौकते हुए पूछा- “वाराह मतलब ‘सूअर’?”

‘सूअर’ शब्द सुनकर बख्तियार खिलज़ी एक पल के लिए चौक गया।

परन्तु सुबाहदार औलिया खान ने उसे खामोश रहने का इशारा किया। सुबाहदार औलिया खान के दिमाग में चल रहे झंझावाओं से अनजान श्रमण शीलभद्र ने हामी भरी।

इसके बाद सुबाहदार औलिया खान ने धीरे से अपना सिर हिलाते हुए शीलभद्र की तरफ देखा और पूछा- “तुम किस खुदा की इबादत करते हो?”

श्रमण शीलभद्र ने उत्तर दिया, “किसी की भी नहीं! हम ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। बुद्ध ने कहा है- ‘ईश्वर एक कल्पना के अलावा कुछ भी नहीं।’

अब ये बात बख्तियार खिलज़ी के बर्दाश्त के बाहर थी। “तौबा तौबा, ये कैसा मजहब है, जिसमें खुदा ही नहीं!”, बख्तियार खिलज़ी की आँखों से अंगारे बरसने लगे।

अगले ही पल उसने अपने कमर में खोंस कर रखा खंजर निकाला और अफगानी कबाब का जयका लेते श्रमण शीलभद्र के सीने में भोंक दिया।

थोड़ी देर बाद जब उसका क्रोध कुछ शांत हुआ तब सुबाहदार औलिया खान बोला, “हुजुर ने धरती पर से एक मुसलमान कम कर दिया।”

बख्तियार खिलजी ने चौक कर सुबाहदार औलिया खान की तरफ देखा। सुबाहदार औलिया खान बोला, “ये बौद्ध था। हिन्दू मर जाते हैं, लेकिन आसानी से मुसलमान नहीं बनते। परन्तु बौद्ध आसानी से मुसलमान बनने को राजी हो जाते हैं। मैंने कल ही एक मठ में पांच हजार बौद्ध मजहब मानने वालों को सिर्फ तलवार के डर से इस्लाम कबुलवाया है। हमारा अगला निशाना ‘हिन्दू’ नहीं ‘बौद्ध’ होने चाहिए क्योंकि ये आसानी से इस्लाम कबूल करते हैं।”

बख्तियार खिलजी ने अपने बेहद अनुभवी सुबाहदार औलिया खान की राय पर अपनी सहमती देने में देर नहीं लगायी। है

इसके बाद बख्तियार खिलजी ने अपने सुबाहदार औलिया खान के साथ नालंदा विश्वविद्यालय का रुख किया। उस समय नालंदा महाविद्यालय पूरी दुनिया का सबसे बड़ा ज्ञान और विज्ञान का केंद्र था जहां दस हजार छात्र और एक हजार शिक्षक एक बड़े परिसर में रहते थे। जहां एक तीन मंजिला इमारत में विशालकाय पुस्तकालय था, जिसमें एक करोड़ पुस्तकें, पांडुलिपियां एवं ग्रंथ थे।

नालंदा अभियान के दौरान खिलजी के सैनिकों की तलवारों की मार से बौद्ध शिक्षकों और छात्रों के सिर जमीन पर लोटने लगे और कुछ ही पलों में नालंदा का विशाल पुस्तकालय धूँ- धूँ कर जलने लगा। वो पुस्तकें जो ज्ञान का प्रकाश समस्त विश्व में फैलाती थीं, उनके जलने से उठे धुँएँ से समस्त आकाश काला पड़ गया। इतना काला कि, छह माह तक सूर्य की प्रचंड किरणें भी उस कालिमा को भेदने में असफल थीं।

इसके बाद बख्तियार खिलजी के सैनिकों ने उदन्तपुरी के विशाल पुस्तकालय तथा रास्ते में पड़ने वाले सभी बौद्ध मठों और मंदिरों को नेस्तनाबूद करना आरम्भ कर दिया। ये वो बौद्ध मठ, बौद्ध मंदिर और बौद्ध विश्वविद्यालय थे, जिन्हें पाल वंश के शासकों ने 8 वीं शताब्दी से 11वीं शताब्दी के अंत तक बंगाल और बिहार के कुछ

प्रमुख शहर पाटलिपुत्र, गौड़ा, सोमपुरा, मुंगेर, रामवती, विक्रमपुर और जग्गादला में बनवाये थे ।

बारहवीं शताब्दी में पाल राजाओं के राज्याश्रय में बौद्ध धर्म बिहार और बंगाल में फल-फूल रहा था । इसके करोंड़ों अनुयायी थे । लेकिन, बख्तियार खिलजी के एक सैन्य अभियान से ये सारा धर्म साम्राज्य रेत के महल की तरह बिखर गया और लाखों की संख्या में बौद्ध धर्मावलम्बियों ने मौत के डर से इस्लाम स्वीकार करने में देरी नहीं लगायी ।

जिन बौद्ध धर्मावलम्बियों का सीधा सामना खिलजी के सैनिकों की तलवारों से नहीं हुआ वे भूमिगत हो गए और धीरे-धीरे अपने पूर्वजों के धर्म सनातन धर्म में मिश्रित हो गए । इस प्रकार इस समस्त क्षेत्र से बौद्ध धर्म का नामो निशान मिट गया ।

बड़े-बड़े बौद्ध विहार खंडहरों में तब्दील हो गये । गौतम बुद्ध के जीवन से जुड़े सभी बौद्ध स्थल; बोधगया, कुशीनगर, सारनाथ, वैशाली और जेतवन आने वाले 500 सालों तक दुनिया की नज़रों से पूरी तरह ओझल हो गए ।

अन्य बौद्ध मठों की भांति बुद्ध के ज्ञान का साक्षी मौर्यकालीन अतिप्राचीन गया ला महाबोधि मंदिर निर्जन हो सदियों के लिए दुनिया की नज़रों से ओझल हो गया, और यह मंदिर दुबारा प्रकाश में तब आया जब ब्रिटिश काल में इतिहासकार तथा भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के महानिदेशक अलेक्जेंडर कर्निघम ने वर्ष 1885 में इस मंदिर की दुबारा खोज की और बताया कि गौतम बुद्ध को इसी स्थान पर ज्ञान प्राप्त हुआ था ।

लेकिन इस बीच साढ़े पांच सौ सालों तक बुद्ध के इतिहास से अनभिज्ञ होने के कारण हिन्दू ग्रामीण नर-नारी, खेतों, कुओं, तालाबों और मठों के खंडहरों में छिपायी गई बुद्ध की इन प्राचीन मूर्तियों को अलग-अलग समयांतरालों में प्राप्त कर उन्हें किसी प्राचीन हिन्दू, देवी - देवता का स्वरूप मान छोटे छोटे मंदिरों में स्थापित कर हिन्दू पद्धति से पूजते रहे । इस प्रकार अनजाने में ही उन्होंने भारत

की प्राचीन बौद्ध विरासत को इस्लामी आक्रमण से सुरक्षित कर दिया।

लेकिन, एक तरफ जहाँ हिन्दुओं के मंदिर टूटते रहे, और बार बार बनते रहे। क्योंकि उनका प्रतिरोध लगातार जारी रहा। उन्होंने कभी भी इस्लाम की तलवार के आगे सिर नहीं झुकाया। लेकिन दूसरी तरफ उत्तर और पूर्वी भारत से बौद्ध धर्म का नामोनिशान मिट गया। हिन्दुओं के प्रति घृणा और अनावश्यक अहिंसावादी बनने की जो कीमत बौद्ध धर्मावलम्बियों ने चुकाई उसकी दूसरी मिसाल मिलनी मुश्किल है। लेकिन, सबसे बड़ा नुकसान तो भारत वर्ष के स्वर्णिम अतीत के स्मारकों का हुआ। अगर इन करोड़ों बौद्ध धर्मावलम्बियों ने वैदिक हिन्दुओं के साथ मिलकर विदेशी आक्रान्ताओं का सामना किया होता तो आज उत्तर और पूर्वी भारत में सैकड़ों प्राचीन मंदिर और बौद्ध विहार मौजूद होते और भारत को 1000 वर्षों की गुलामी का दंश नहीं झेलना पड़ता।

बख्तियार खिलजी का बौद्ध धर्मावलम्बियों को मुसलमान बनाने की नीति कोई नई नीति नहीं थी, बल्कि सैकड़ों साल पुरानी घटनाओं की पुनरावृत्ति मात्र थी जिसमें बौद्ध बहुल अफगानिस्तान, कश्मीर और मध्य एशिया के कई देशों का इस्लामीकरण किया गया था।

दुनिया के किसी भी हिस्से में जहाँ हिन्दू धर्म को बौद्ध धर्म ने प्रतिस्थापित किया वहाँ देर-सबेर इस्लाम के धर्मप्रचारकों ने बौद्ध धर्मावलम्बियों का बिना किसी प्रतिरोध के इस्लामीकरण कर दिया।

भारत के जिन हिस्सों में तलवार के डर से जिन लोगों ने धर्म परिवर्तन किया था उनमें अधिकांश हिन्दू नहीं बल्कि बौद्ध थे। कश्मीर, अफगानिस्तान और बंगाल में धर्म परिवर्तन करने वाले अधिकांश लोग बौद्ध थे।

दरअसल पिछले हजार सालों में जो भी भारतीय नृजातीय समाज तथा धार्मिक सम्प्रदाय सनातनकी मुख्य धारा से अलग होकर स्वयं को अलग-थलग करने के लिए तत्पर हुए उनका देर-स्वेर धर्मान्तरण हुआ। और, ये धर्मांतरण सिर्फ धार्मिक विश्वास का नहीं

बल्कि सांस्कृतिक विप्लव था, जिसने हजारों वर्ष पुरानी संस्कृतियों को एक झटके से समाप्त कर दिया। जिस तरह एक शिकारी चीते की नीति अपने शिकार को उसके झुण्ड से अलग-थलग कर उनका शिकार करने की होती है, उसी प्रकार धर्मान्तरण कराने वाले शिकारियों की नीति भी किसी स्थानीय समुदाय में मुख्य सनातन धर्म के प्रति घृणा पैदा करने और फिर देर-सबेर उनका धर्मांतरण कराने की होती है।

देश में दलित और आदिवासी समाज को उद्देलित कर उन्हें सनातन संस्कृति से अलग कर उनका धर्मांतरण और फिर भारत की समस्त प्राचीन सांस्कृतिक पहचान को खत्म करने की साजिश को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। एक बात हम सभी समझ लें। धर्मांतरण सिर्फ आस्थाओं का परिवर्तन नहीं है बल्कि यह सांस्कृतिक विप्लव है। खान-पान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार और सबसे खतरनाक राष्ट्र और मातृभूमि के प्रति आस्थाओं का परिवर्तन है। बख्तियार खिलजी ने भी उसी नीति नीति का पालन किया था, हिन्दुओं के बजाय, उनसे छिटककर दूर खड़े बौद्ध धर्मावलम्बियों को अपना निशाना बनाया। लेकिन, इसके बाद जैसे ही उसने अपनी नीति से अलग होकर हिन्दू जनता को निशाना बनाया उसे असम से लेकर बंगाल तक लगातार भीषण प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, और अंततः असम के हिन्दू अहोम राजा के हाथों पराजित हो घायलावस्था में अपने सिपहसालारों के द्वारा मार डाला गया।

साढ़े चार सौ वर्ष पूर्व
ईसवी सन, 1590
तीर्थ क्षेत्र गया, मगध, बिहार

रात का अंतिम पहर उतार पर था। खिली हुई चांदनी में निरंजना नदी का जल सोने की तरह चमक रहा था। वे सात घुड़सवार थे, जो निरंजना नदी के किनारे-किनारे अपने मंजिल की तरफ बढ़ रहे थे। उनका नेतृत्व एक लम्बी कद-काठी का एक संन्यासी कर रहा था, जिसके ललाट पर त्रिपुंड बड़ा ही दिव्य लग रहा था।

उसने अपने साथी घुड़सवार को संबोधित करते हुए कहा, “...जानते हो रमण, इस नदी में सिर्फ पावस ऋतु में जल का प्रवाह होता है, शेष वर्ष भर यह सूखी रहती है। निरंजना निर्जला है, फिर भी निर्जरा है। इसमें जल नहीं अपितु बोध, मोक्ष, ज्ञान, संस्कृति और सभ्यता की सैकड़ों स्मृतियाँ और परम्पराएं आदिकाल से निरंतर प्रवाहित होती रही हैं।”

“गुरुदेव आपने ही एक बार बताया था कि इस भारत भूमि की सभी नदियाँ साक्षात् देवियाँ हैं। इन महान नदियों के बूते ही सनातन धर्म की आध्यत्मिक शक्तियाँ हजारों वर्षों से सुरक्षित रही हैं”, सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाते हुए रमण बोला।

घमंडीगिरी ने प्रशंसा के भाव के साथ एकबार रमण की तरफ देखा और बोले, “सनातन धर्म की एक महान विशेषता है कि इसमें देवताओं की तुलना में देवियों की संख्या ज्यादा है। सनातन धर्म के संरक्षण का वास्तविक श्रेय तो इस पुण्य वसुधा की महान नारियों को ही मिलेगा।”

भोर की पहली किरण के साथ घुड़सवारों का यह दल पवित्र तीर्थ गयाजी की पवित्र धरती पर पहुंचा। इस पवित्र स्थल पर अनादिकाल से सनातनधर्मी अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए पिंडदान करते हैं। घमंडीगिरी आश्चर्यचकित थे कि उन्हें संत अर्जनदेव जी ने गया तीर्थ में पूर्वजों का पिंडदान करने का संकेत क्यों दिया था, खासकर तब जब सन्यासियों द्वारा पूर्वजों पिंडदान की परम्परा नहीं थी।

दरअसल हरिद्वार के दसनामी अखाड़े के साधू गोसाईं घमंडी गिरी जी अपने शिष्यों के साथ तीर्थाटन पर थे। इसी क्रम में वे पांच नदियों वाले प्रदेश पंजाब के आदि तिरथ अर्थात् अमृतसर पहुंचे। यहाँ पर हिन्दुओं के सबसे प्राचीन तीर्थों में से एक तीर्थ ‘रामतीरथ’ त्रेता युग से ही मौजूद था।

हिन्दुओं में यह मान्यता थी कि भगवान राम द्वारा माता सीता का परित्याग करने के पश्चात् वाल्मीकिजी ने सीताजी को इसी स्थान पर अपने आश्रम में आश्रय दिया था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार, सीताजी ने रामतीरथ आश्रम में ही श्री राम के पुत्रों लव और कुश को जन्म दिया था। महर्षि वाल्मीकि ने रामायण की रचना भी इसी स्थान पर की थी। इसी आश्रम में उन्होंने लव और कुश को शस्त्र चलाने की शिक्षा भी दी थी। श्री राम के अश्वमेध यज्ञ के दौरान, लव और

कुश ने अनुष्ठान के घोड़े को पकड़ा था और हनुमानजी को आज के दुर्गियाना मंदिर के पास एक पेड़ से बांध दिया था ।

दुर्गियाना मंदिर के पास के पवित्र सरोवर में स्नान-ध्यान करने के उपरांत गोसाईं घमंडी गिरी जी महाराज अपने पूज्य गुरु के आदेशानुसार सिख संत अर्जन देवजी के दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु निकल पड़े ।

यह वह दौर था जब मुगलिया सल्तनत दिल्ली पर अपना पैर जमा चुकी थी और अफीमची बादशाह जहाँगीर हिंदुस्तान पर मनमाने तरीके से राज-काज करते हुए इस्लाम को तलवार के बल पर फैला रहा था । मुगलिया हुक्मरानों के भय के साये में भारतवर्ष की जनता नतमस्तक हो अपना धर्म, धन और आत्मबल खोती जा रही थी ।

ऐसे में पंजाब में सिख गुरुओं ने सनातन धर्म-रक्षा का बीड़ा उठाया । अथ सत तीरथ के निर्माण का कार्य आरम्भ हो चुका था ।

गुरु के आदेश से हरिद्वार के संत गोसाईं घमंडी गिरीजी महाराज ने अपना परिचय देने के लिए अपने गुरु की मुहर लगी चिट्ठी संत अर्जनदेवजी के समक्ष प्रस्तुत किया । अर्जनदेवजी ने चिट्ठी पढ़कर स्नेहवस महाप्राण घमंडी गिरीजी के सिर पर अपना हाथ रख दिया ।

अर्जनदेवजी भी दसनामी अखाड़े के नागा साधुओं के पराक्रम तथा सनातन धर्म की रक्षा के लिए उनके प्रयासों से भलीभांति परिचित थे । संत अर्जन देव महान ब्रह्मज्ञानी थे । उन्हें समझते देर न लगी कि उनके सामने नतमस्तक संत कोई सामान्य साधू नहीं है बल्कि इसके के हाथों कोई महान कार्य सिद्ध होना निर्धारित है ।

उन्होंने बड़े ही स्नेह के साथ पूछा “.....तो महाराजजी, तीर्थाटन पर निकले हैं? यहाँ से गया तीर्थ में अपने पूर्वजों का पिंडदान और उसके उपरांत अयोध्याजी में प्रभु श्री रामलाला के दर्शन की सुभेक्षा है?”

महाप्राण घमंडी गिरी ने आदर भाव के साथ सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया किन्तु गयातीर्थ में अपने पूर्वजों का पिंडदान करने वाली बात पर वह चौक पड़े। उनकी ऐसी कोई योजना नहीं थी।

संत अर्जनदेव से घमंडी गिरी के चेहरे पर उभरी उलझन छिपी न रही। वे बोले-“महाराजजी आपके गुरुजी के द्वारा लिखे गए पत्र में आपकी यात्रा योजना लिखी हुई है। महाराजजी, मेरा एक छोटा सा कार्य करेंगे?”

महाप्राण घमंडी गिरी जी ने आदर भाव से अपने दोनों हाथ जोड़ दिए और बोले, “गुरुदेव, आपकी आज्ञा का पालन मेरे जीवन से ज्यादा मूल्यवान होगा।”

संत बोले-“अयोध्याजी की एक महान थाती मेरे परिवार के पास पिछले दो सौ वर्षों से सुरक्षित है। इसे संभवतः गुरु नानकदेवजी के पुत्र परम आदरणीय श्री चंदजी के समय में अयोध्याजी से यहाँ लाकर रखा गया था, ताकि विधर्मियों के आक्रमण से इसे यह सुरक्षित रखा जा सके। अब समय आ गया है कि इस थाती को वापस उसी स्थान पर भेज दिया जाय जहाँ से यह आया है।”

महाप्राण घमंडी गिरी जी ने आदर भाव से सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

थोड़ी देर बाद गुरु ने लाल वस्त्र में लिपटी एक चौकोर वस्तु घमंडी गिरी को सौंपी और बोले, “यह आपकी आने वाली पीढ़ियों की थाती है। इसकी रक्षा अपने प्राणों से भी बढ़ कर करना महाराजी। इसे सुरक्षित रखने के लिए हमारे पूर्वजों ने भी बहुत एहतियात बरती थी।” वे आगे बोले, “इसे जैसा है, उसी रूप में मेरे द्वारा निर्देशित पवित्र एवं सुरक्षित स्थल पर पहुँचना है। यह आपके जीवन का सबसे महान कार्य होगा। सनातन की विरासत रक्षा के लिए आपका यह कार्य अमर हो जाएगा, और आने वाली पीढ़ियाँ आपकी कृतज्ञ होंगी।”

गोसाईं घमंडी गिरी ने सनातन की उस अमूल्य थाती को आदर के साथ अपने मस्तक से लगाया और फिर उसे अपनी पीठ

पर कुछ इस तरह बांध लिया जैसे वह उनके शरीर का कोई अभिन्न हिस्सा हो, और संत अर्जन देव को प्रणाम कर उसी क्षण वहां से प्रस्थान कर गये।

अगले दिन प्रातः वे जब दुर्गियाना मंदिर से बाहर निकले तो उनकी अगली मंजिल गया पूण्य तीर्थ था, जहाँ उन्हें अपने पितरों का अंतिम संस्कार करना था तथा इसके बाद उन्हें इस अमूल्य थाती को संत श्री अर्जन देवजी के निदेशानुसार किसी अति सुरक्षित स्थान पर रखना था।

इधर बलित्यार खिलजी द्वारा नालंदा, विक्रमशिला और बोधगया के विश्वप्रसिद्ध महाबोधि मंदिर के विध्वंस और ब्रह्मकल्पित ब्राह्मण माधव शास्त्री और उनके परिवार के सभी पुरुष सदस्यों के बलिदान के तीन सौ से भी ज्यादा वर्ष बीत चुके थे।

गया तीर्थ क्षेत्र का वह नृशंस नरसंहार धीरे-धीरे लोगों के मानस पटल से ओझल हो गया था, किन्तु ब्रह्म कल्पित ब्राह्मणों की आत्माएं अपने मोक्ष की आशा में अपने वंशजों का इन्तजार अब भी कर रहीं थीं। इन तीन सौ सालों में सभी के वंशज आये थे, लेकिन वह नहीं आया था जिसकी प्रतीक्षा इन अतृप्त आत्माओं को पिछले तीन सौ वर्षों से था।

पितृपक्ष के प्रथम दिवस के उषा काल में अपने गुरु के आदेश से प्रेरित घमंडी गिरीजी महाराज जब पवित्र विष्णुपद मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़े तो उन्हें बिलकुल भान नहीं था कि वह अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए भागीरथ की भांति महान कार्य के निमित्त यहाँ आये हैं।

घमंडी गिरी का समस्त बाल्यकाल ब्रजमंडल की गोधूलि में क्रीड़ा करते और शस्त्र-शास्त्रों के अध्ययन में बीता था। उन्हें तनिक भी भान नहीं था कि उनके पूर्वज गया तीर्थ के ब्रह्म कल्पित ब्राह्मण

थे तथा उनके पितामह ने एक महान धर्मयुद्ध का नेतृत्व किया तथा आत्म-बलिदान दिया था।

सुबह की पहली किरण के साथ जब पितृपक्ष के पहले दिन महाप्राण घमंडीगिरिजी अपने सात घुड़सवार शिष्यों के साथ विष्णुपद मंदिर की सीढ़ियों तक पहुंचे तो वहां यजमानों की प्रतीक्षा में बैठे ब्राह्मणों की बांछें खिल गईं।

अखिलेश्वर दुबे नामक ब्राह्मण तेज कदमों से चलता हुआ घमंडी गिरिजी के पास पहुंचा और पूछने लगा- “का हो यजमान! किस क्षेत्र से आना हुआ है?”

घमंडी गिरिजी के एक शिष्य ने उत्तर दिया- “हरिद्वार से!”

परन्तु घमंडी गिरिजी ने उत्तर दिया- “ब्रज मंडल से आया हूँ। संन्यासी हूँ, किन्तु गुरु के आदेश से अपने पूर्वजों का श्राद्ध करना चाहता हूँ।”

ब्रजमंडल की बात सुनकर अखिलेश्वर पंडा के चेहरे पर निराशा के भाव आ गए। वह चिल्ला कर बोला- “हो देवनन्दन पंडा तोहरा क्षेत्र से एगो यजमान आया है।”

अखिलेश्वर पंडा की बात सुनकर एक वृद्ध ब्राह्मण तेजी से चलता हुआ घमंडी जी गिरिजी के पास पहुंचा और बिना किसी भूमिका के बोला, “यजमान, श्राद्ध सामग्री की यह सूची लेकर सामने वाली दूकान पर जाओ और जल्दी से ये सब सामान खरीद लाओ।”

घमंडी गिरिजी ने भोजपत्र पर लिखी सामग्री सूची पर एक नजर डाली और अपने एक शिष्य की तरफ उसे बढ़ा दिया, जो कुछ ही देर में अक्षत, चावल, काला तिल, जनेऊ, सफेद फूल आदि लेकर आ गया।

सामने एक चौकी पर बैठा वृद्ध ब्राह्मण सामग्री आने का इंतजार ही कर रहा था। उसने घमंडी गिरिजी की तरफ देखे बिना कहा, “मुंडन करवा कर स्नान करना होगा। श्वेत वस्त्र धारण करना होगा।”

प्रत्युत्तर में घमंडी गिरिजी ने किसी आज्ञाकारी बालक की भांति अपना सिर हिलाया।

“कौन जात हो? छत्रिय हो का?” उसने पूछा।

“संन्यास धारण करने के पूर्व ब्राह्मण था!”, घमंडी गिरी ने उत्तर दिया।

पण्डे के हृदय में संदेह जागा, “क्या आजकल ब्राह्मण भी घोड़े पर घूमते हैं, और कमर में कटार रखते हैं?”

“गोत्र क्या हैं?” बूढ़ा ब्राह्मण घमंडी महाराज की जाति को लेकर आश्चर्य होना चाह रहा था।

घमंडी गिरी ने जैसे ही अपना गोत्र बताया वृद्ध ब्राह्मण गुस्से से चिल्लाया, “नीच, कालनेमि ये गोत्र तो गयातीर्थ के ब्रह्म कल्पित गयावाल ब्राह्मणों का है। तू तो कहता है कि तू ब्रज मंडल का निवासी है। झूठा!”

घमंडी गिरी उसकी बातें सुनकर भी खामोश रहे। वस्तुतः वे स्वयं भी चकित थे कि क्या हो रहा है।

वृद्ध पंडा कुपित स्वर में बोला, “अगर तुम्हारे पूर्वज ब्रह्मकल्पित ब्राह्मण हैं तो वे ब्रज मंडल में कैसे चले गए? यहां के ब्राह्मण तो गया तीर्थ छोड़ कहीं और तीर्थ में बसते नहीं नहीं?”

अब घमंडी जी गिरीजी को भला क्या मालूम कि उनके पूर्वज गयातीर्थ से ब्रजमंडल कब और क्यों गए थे। गिरिजी महाराज ने उत्तर में अनभिज्ञता के भाव के साथ अपना सिर हिलाया।

अब वृद्ध ब्राह्मण निर्णायक स्वर में बोला, “हमसे यह पाप कर्म न होगा।” और वह जाने को तत्पर हुआ।

परन्तु, घमंडी गिरी के एक शिष्य से अपने गुरु का अपमान देखा न गया। उसने धीरे से अपनी कटार वृद्ध ब्राह्मण की पीठ में रखी। कुछ इस प्रकार कि घमंडी गिरी की नजर उसपर न पड़े।

जैसे ही कटार की नोंक वृद्ध ब्राह्मण के पीठ में चुभी, ब्राह्मण चतुर था। उसे समझ आ गया कि एक झटके में उसकी जान चली जाएगी। अतः वह अपनी भाव भंगिमा बदलते हुए धीरे से बोला, “अगर यजमान मिथ्या संकल्प करेगा तो नरक इसके पितर भोगेंगे!! मुझे क्या?”

इसके बाद उस वृद्ध ब्राह्मण ने घमंडी गिरी से कहा कि वह अपने पूर्वजों का नाम बताएं जिससे कि वह उनका नाम अपनी

वंशावली की पोथी में दर्ज कर सके। घमंडी गिरी जी को कुल मिला कर पिता, पितामह और प्रपितामह का नाम याद थे। उनमें से किसी का भी नाम वृद्ध ब्राह्मण के पास मौजूद वंशावली वाली पोथी में नहीं था।

एक बार फिर से वृद्ध ब्राह्मण कुपित होकर बोला, “तुम ब्राह्मण नहीं हो. ब्रह्म कल्पित ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने का का ढोंग करते तुझे लाज नहीं आती?”

इस बार घमंडीजी महाराज की भुकुटि चढ़ गई। वे गुस्से से लाल होते हुए बोले- “अरे ब्राह्मण! हम तुम जैसे मूढ़ और दम्भी ब्राह्मणों की रक्षा के लिए शस्त्र और शास्त्र दोनों धारण करते हैं। अब अगर तूने एक बार भी मेरे पितरों के बारे में कुछ भी अपमानजनक कहा तो मैं तुम्हारा शीश इस स्थान पर काट कर प्रेत टीला पर टांग दूंगा।” वे आगे बोले, “मैं संन्यासी हूँ मैं अपने गुरु के आदेश तथा ईश्वरीय प्रेरणा से इस स्थान पर अपने पूर्वजों के मोक्ष के लिए आया हूँ। अगर तुमने इस पवित्र कार्य में मेरी मदद नहीं की तो इसी क्षण मैं तुम्हें स्वर्ग भेज दूंगा जिससे कि तुम मेरे पितरों से साक्षात् मिलकर उनका कुल और गोत्र जान सको।”

घमंडी गिरी के चेहरे की आक्रामकता और ललाट पर सत्य की चमक को देखकर ब्राह्मण की हिम्मत नहीं हुई वह कुछ और कहे।

वह चुपचाप उठा और घमंडी गिरी को लेकर फल्गु नदी की तरफ बढ़ा। मुंडन और स्नान के उपरांत घमंडी गिरी जी, शांतिपूर्वक पिंड दान करने के लिए भीड़-भाड़ से दूर फल्गु नदी के एक निर्जन स्थान पहुंचे।

फल्गु नदी पूरी तरह से सूखी हुई थी। दूर-दूर तक एक बूंद जल भी सतह पर नहीं था।

जल के लिए उन्होंने आसपास देखा। वृद्ध ब्राह्मण उनके बगल में बैठा उन्हें निर्देशित कर रहा था। ब्राह्मण ने अपने हाथों से इशारा किया कि फल्गु के रेत को थोड़ा सा हटाने से जल प्राप्त हो जाएगा।

उसके निर्देश का पालन करते हुए घमंडी गिरी ने फल्गु नदी के एक किनारे के चट्टान के पास से रेत निकालना शुरू किया। लेकिन, लगभग एक हाथ गद्दा खोदने के बाद भी पानी का नामोनिशान निशान नहीं था।

ब्राह्मण ने मन ही मन सोचा- ‘इस पापी के पितरों को आज जल नहीं मिलने वाला।’ लेकिन प्रत्यक्षतः उसने इशारा किया कि थोड़ी रेत और निकालो। किन्तु, गज भर रेत निकालने के बाद भी जल के दर्शन नहीं हुए तो ब्राह्मण ने इशारा किया कि वे रेत निकालते रहे। घमंड गिरी लगातार रेत निकालते रहे, इस क्रम में उनकी उंगलियाँ लहलुहान हो गईं, लेकिन वे रुके नहीं। फल्गु की श्वेत बालुका राशि उनके लहू से रक्ताभ हो चली लेकिन जल का एक बूंद भी नहीं निकला।

वृद्ध ब्राह्मण इस घटना को भयभीत दृष्टि से देख रहा था। उसने अपने जीवन में फल्गु नदी पर ऐसा दृश्य कभी नहीं देखा था। यह घोर आश्चर्य का विषय था क्योंकि यजमान मुठ्ठी भर रेत उठाते और जल के दर्शन हो जाते थे।

वह भयभीत स्वर में बोला, “भगवान् नहीं चाहते हैं कि तुम यहां अपने पूर्वजों का पिंडदान करो। ऐसा मैंने अपने जीवन में कभी देखा नहीं कि कमर तक खुदाई करने के बाद भी जल न निकला हो।”

लेकिन घमंडी गिरी ने उसकी बातों को अनसुना कर दिया। अब वे दुगुनी तेजी के साथ रेत निकालने लगे। लगभग घंटा भर रेत निकालने के बाद भी उस स्थान से जल नहीं निकल रहा था।

एक तरफ घमंडी गिरी अपनी जिद पर थे तो दूसरी तरफ निरंजना नदी उन्हें पूर्वजों को अर्पित करने के लिए जल देने को तैयार नहीं थी। जल्दी ही इस घटना की सूचना आसपास के क्षेत्र में फैल गई सैकड़ों की संख्या में पिंडदान करने वाले यजमान और स्थानीय ब्राह्मण वहां इकट्ठा हो गए।

अब ब्राह्मणों ने एकत्र होकर चर्चा करना आरम्भ कर दिया कि इस व्यक्ति को और पवित्र फल्गु नदी की रेत निकालने से रोका जाए। यह आदमी कोई विधर्मी है। लेकिन, उनके साथ सात सशस्त्र

घुड़सवारों की टुकड़ी को देखकर किसी की हिम्मत नहीं हुई कि वे उन्हें रोक सके।

लेकिन, तभी एक अचम्भा हुआ। घमंडी गिरी की उंगुलियां किसी सरख्त चीज से टकरायीं। उन्हें लगा मानो कोई पत्थर का टुकड़ा है। उन्होंने अपनी रक्तरंजित उंगुलियों से पकड़कर जैसे ही उसे बाहर निकाला, वहां मौजूद भीड़ में खलबली मच गई। यह एक नरमुंड था।

घमंडी गिरी के रक्तरंजित हाथों में नरमुंड देख पुरोहित के रूप में सामने बैठा वृद्ध ब्राह्मण तेजी से उठा और वहां से भागने को तत्पर हुआ। इधर जैसे ही गढढे से नरमुंड बाहर आया, भीतर रुका हुआ धीरे-धीरे पानी रिसने लगा और थोड़ी ही देर में उस गड्डे से पानी का एक जबरदस्त फूटा और घमंडी गिरी के शरीर और उनके हाथों में मौजूद नरमुंड को भिंगोने लगा।

यह एक अद्भुत दृश्य था। घमंडी गिरी के हाथों में एक नरमुंड और पवित्र निरंजना नदी के हृदय से निकलता हुआ पवित्र जल फब्बारा। यह चकित कर देने वाला एक ऐसा दृश्य था, जिसके साक्षी फल्गु तट पर एकत्रित देश देशांतर के सैकड़ों लोग थे। घमंडी गिरी ने नरमुंड को अपने हाथों में लेकर गौर से देखा। किसी का धड़ से कटा हुआ सिर था।

उन्होंने वृद्ध ब्राह्मण से पूछा, “मैंने एक नरमुंड को स्पर्श किया है, क्या मुझे पुनः स्नान करना पड़ेगा?”

वृद्ध ब्राह्मण बोला कांपते स्वर में बोला, “मुझे नहीं पता क्या करना है? मेरे जीवन में ऐसी पहली घटना हुई है।”

इस अद्भुत घटना की जानकारी किसी ने ब्रह्मकल्पित पुरोहितों के अध्यक्ष को दे दी तो वह दौड़ते हुए आए और घमंडी गिरी के हाथों से नरमुंड को अपने हाथों में लेकर पलट-पलट कर देखने लगे। फिर उन्होंने अपने आप से कहा, ‘यहां और भी दो नरमुंड होने चाहिए।’

उन्होंने अपने ब्राह्मण साथियों को आदेश दिया कि यहां थोड़ी खुदाई की जाए। लेकिन, कोई भी ब्राह्मण उस स्थान पर हाथ

लगाने के लिए तैयार नहीं हुआ । लेकिन, घमंडी गिरी बिल्कुल निडर भाव से गड्डे के पास अभी भी खड़े थे ।

मुख्य पुरोहित ने उनसे आग्रह किया, “क्या वे अपने शिष्यों की मदद से उस स्थान के आस-पास की थोड़ी और खुदाई कर सकते हैं? घमंडी गिरी जी ने हामी भरी और अपने शिष्यों को तरफ इशारा किया कि वे इस स्थान को खोदने में उसकी मदद करें । अगले कुछ पल बेहद महत्वपूर्ण थे । उस गड्डे के पास से दो और नरमुंड प्राप्त हुए ।

इसके बाद मुख्य पुरोहित ने तत्काल घोषणा की, “मैं इस ब्राह्मणश्रेष्ठ की समस्त वंशावली से परिचित हूँ । यह तपस्वी संन्यासी, ब्राह्मण कुल श्रेष्ठ ब्रह्मकल्पित माधव शास्त्री का वंशज है । मेरा यह अहोभाग्य कि मैं स्वयं अपनी देख-रेख में इस महान ब्राह्मण के पितरों के पिंडदान का कार्य संपन्न कराऊंगा । वो कहानियां जो मैंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पूर्वजों से सुनी थी, वे आज सच हो रही हैं । आज तीन सौ सालों बाद ब्रह्मकल्पित ब्राह्मण माधव शास्त्री की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई है । आज से तीन सौ वर्ष पूर्व उन्होंने सनातन धर्म से बौद्ध धर्म में धर्मान्तरित अपने पुत्र दिवाकर को चुनौती देते हुए जो शब्द कहे थे, वे शब्द आज सत्य हो गए हैं ।”

सभी स्तब्ध थे । पत्थरों की भांति खड़े थे । वे आगे बोले, “आज से 300 वर्षों पूर्व माधव शास्त्री ने पुत्र को धिक्कारते हुए कहा था, ‘तेरा धर्मांतरण निसंदेह मेरे वंश का अंतिम धर्मान्तरण नहीं होगा । यकीनन आज तेरी नास्तिकता तुझे बौद्ध धर्म की तरफ ले जा रही है, लेकिन, जैसे ही तुम्हारी किसी संतति में आस्तिकता जागेगी, अपने जड़ों की तलाश में पुनः सनातन धर्म की तरफ वापस दौड़ेगा । फिर एक दिन इसी निरंजना के तट पर तुम्हारा कोई वंशज मेरे मोक्ष के लिए मेरा पिंडदान करेगा.....और तब तुम्हारे सारे सनातन धर्म विरोधी तर्क अदृश्य हो जायेंगे ।’.....इसके भर्राई हुई आवाज में वह बोला, “देखो, आज इस मोक्ष स्थली गया तीर्थ में माधव

शास्त्री के वंश का एक पुरुष उनका और उनके समस्त परिजनों का पिंडदान अपने रक्तरंजित हथेलियों से कर रहा है।”

इसके बाद सैकड़ों वर्ष पूर्व हुए धर्म-युद्ध में अपने प्राणों की आहुति देने वाले उन तीन ब्राह्मणों के पिंडदान का कार्यक्रम लगातार चार दिनों तक चलता रहा।

पितृपक्ष के चौथे दिन घमंडी महाराज अकाल मृत्यु प्राप्त अपने सभी पूर्वजों का पिंडदान कर अपने शिष्यों के साथ गया तीर्थ के अन्य मंदिरों के दर्शन के लिए निकले।

विष्णुपद मंदिर से कुछ ही दूरी पर एक अति प्राचीन मंदिर का खंडहर देख उनका हृदय विचलित हो उठा। जिज्ञासावस जब उन्होंने अपने शिष्यों के साथ मंदिर के प्रांगण में प्रवेश किया तो पाया कि मंदिर के अंदर मलवे के ढेर में सैकड़ों मूर्तियां टूटी फूटी अवस्था में पड़ी हुई थीं। किसी मूर्ति का सिर खंडित है तो किसी का धड़ गायब है। ऐसा लगता था मानो यहां कोई बहुत बड़ा भूचाल आया हो।

मंदिर की अवस्था देखकर लगा मानो इस मंदिर में सालों से कोई आया न हो। संभवतः यह कोई शापित मंदिर था। मंदिर के आसपास दूर-दूर तक कोई आबादी नहीं थी।

लेकिन आस-पास इक्के दुक्के किसान खेतों में काम जरूर कर रहे थे। उनसे पूछने पर पता चला कि एक बहुत शापित मंदिर है। इसके मलवे सैकड़ों मानव नरकंकाल और हड्डियां बिखरी पड़ी हैं तथा अनजान देवी-देवताओं की सैकड़ों मूर्तियां टूटी-फूटी अवस्था में पड़ी हैं। आस-पास के लोग तो इस मंदिर के आस पास भी जाने से डरते हैं।

गोसाईं घमंडी गिरी के हृदय में भय जैसी कोई चीज नहीं थी। अपने शिष्यों के साथ जब मंदिर के अंदर उन्होंने प्रवेश किया तो पाया कि मंदिर के अंदर मानव नरकंकाल मंदिर के मलवों के नीचे दबे हुए हैं, था सैकड़ों मूर्तियां टूटी-फूटी अवस्था में पड़ी हुई है।

उन्होंने तत्काल उन्होंने सभी मूर्तियों को एक स्थान पर एकत्रित करने का आदेश दिया तथा मानव हड्डियों को एक स्थान पर एकत्रित कर उनका अंतिम संस्कार स्वयं अपने हाथों किया।

इसके अगले दिन फल्गु नदी के तट पर विष्णुपद मंदिर के प्रांगण में अपने शिष्यों को संबोधित करते हुए दृढ़ स्वर में उन्होंने कहा, “आद्यशंकराचार्य ने जिन दस मठों की स्थापना की थी उसका सबसे बड़ा लक्ष्य सनातन धर्म की रक्षा करना था। क्यों न हम इसी स्थान पर स्थायी निवास करें तथा इस महान तीर्थ की विधर्मियों से रक्षा करें।”

सभी ने सहमती की मुद्रा में अपना सर हिलाया।

इसके बाद जीर्णशीर्ण पड़े महाबोधि मंदिर के पास की बंजर पड़ी भूमि दान में प्राप्त कर गोसाईं घमंडी गिरी जी महाराज के द्वारा 1590 ईसवी में एक मठ की स्थापना की गई। महाबोधि मंदिर से प्राप्त बुद्ध की मूर्तियों को संग्रहित कर उन्हें इस मठ में सुरक्षित रख दिया गया। महाबोधि मंदिर के महत्व और इतिहास से अनभिज्ञ दशनामी मठ के महन्तों ने इस प्राचीन बौद्ध मंदिर को बचाए रखने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

ईसवी सन, 2016
संगम स्थल, प्रयागराज, उत्तरप्रदेश

लगातार तीसरी बार सिविल सर्विसेज की परीक्षा में गुलाटी मारने के बाद वे तीनों प्रयाग के संगमतट पर बैठे मूंगफली फोड़ रहे थे।

ये तीनों पिछले तीन वर्षों से इंटरव्यू में एक ही गलती दोहरा रहे थे, लेकिन क्या मजाल जो संगम पर मौजूद बड़े हनुमानजी, जिनकी पूजा के साथ इनका दिन आरम्भ होता था वे भी इन्हें इस गलती को ठीक करने के लिए प्रेरित दें।

काफी देर तक तीनों खामोशी के साथ संगम के जल में उठने वाले भंवर को देखते रहे, अचानक जगत रत्नाकर अपना सिर खुजाते हुए बोला, “गुप्ता सर ने हिदायत दी थी कि इंटरव्यू बोर्ड के सामने अपनी व्यक्तिगत राय या शोध मत परोसना। जो कुछ एनसीइआरटी की पुस्तकों में लिखा गया है, वही भारत असली इतिहास है। उसमें लिखे से थोड़ा भी इधर-उधर भटकोगे तो इंटरव्यू बोर्ड के सदस्यों द्वारा दरवाजे से बाहर धकिया दिए जाओगे।”

“रत्नाकर तू यहाँ तो हमें ज्ञान दे रहा है, लेकिन तुझसे किसने कहा था, इंटरव्यू बोर्ड के सामने अपने परसनल शोध का प्रेजेंटेशन देने के लिए?” शाही ने रत्नाकर को टोका।

“मैंने सिर्फ इतना कहा था कि जहाँ बाबरी थी उसी स्थान पर पुरातन काल से एक प्राचीन राम मंदिर था, जो कम से कम दो हजार वर्ष पुराना रहा होगा,” रत्नाकर ने झेंपते हुए उत्तर दिया।

“लेकिन, मेरे भाई शाही तुम्हें महात्मा बुद्ध पर अनर्गल टिप्पणी करने की क्या आवश्यकता थी?”- अशोक ने शाही को घेरा।

“मैंने बुद्ध पर कोई अनर्गल टिप्पणी नहीं की थी।”, शाही बोला, “सिर्फ इतना कहा था कि पुस्तकों में वर्णित बुद्ध का चरित्र बहुत ही विरोधाभासी हैं। किशोरावस्था में अपने भाई द्वारा एक पक्षी को घायल कर देने पर द्रवित होने वाले राजकुमार सिद्धार्थ, जब बुद्ध बने तब वाराह शिशु का नर्म मांस ग्रहण करने में नहीं हिचकिचाये थे। मुझे लगता है, साक्षात्कार में कम अंक आने की मुख्य वजह मेरा कमजोर सम्प्रेषण था न कि कोई अन्य कारण।”

लेकिन बेचारे अशोक के साक्षात्कार की कहानी शाही से अलग थी। उससे इंटरव्यू बोर्ड के एक सदस्य ने प्रश्न किया कि एक बहुत ही प्रसिद्ध इतिहासकार का मानना है कि महाभारत के काल के धर्मराज युधिष्ठिर का चरित्र गौतम बुद्ध से प्रभावित है, इसपर उनका क्या कहना है? अशोक ने बहुत ही गंभीरता से उत्तर दिया था कि बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध धर्म मनुस्मृति के एक श्लोक से बहुत अधिक प्रभावित जान पड़ता है। एक सदस्य ने अशोक से इसके पक्ष में प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए कहा तो अशोक ने श्लोक पढ़कर उसकी व्याख्या प्रस्तुत कर दी।

“धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥”

इस श्लोक के अनुसार मनु ने धर्म के जो दस लक्षण गिनाए हैं, वही लक्षण किसी न किसी रूप में बौद्ध धर्म में भी परिलक्षित होते हैं।

तब एक सदस्य महोदय के सवाल दाग दिया था, “बुद्ध ज्यादा पुराने या मनु?”

अशोक ने बिना किसी झिझक के उत्तर दिया था, “मनु!, पुराणों के मुताबिक स्वयंभु मनु के बाद क्रमशः 14 मनु हुए हैं। महाभारत में 8 मनुओं का उल्लेख मिलता है, जबकि श्वेतवराह कल्प में 14 मनुओं का उल्लेख है। जैन धर्मग्रंथों में भी 14 कुलकरो का वर्णन मिलता है। इस आधार पर तो ये मनु, बुद्ध से हजारों साल पहले जन्मे थे”

तब सदस्य महोदय ने कहा- “हम पुराणों को इतिहास के साक्ष्य के रूप में नहीं मानते। कोई अन्य साक्ष्य दो”

“तब तो बुद्ध भी ऐतिहासिक पुरुष नहीं हुए? क्योंकि हमारे पास बुद्ध के जन्म से लेकर मृत्यु तक के काल खंड का कोई भी लिखित या भौतिक साक्ष्य नहीं है?”, अशोक ने पलट कर प्रश्न किया था।

“इतिहास के कैसे विद्यार्थी हो बुद्ध को काल्पनिक व्यक्ति कहते हो?”, सदस्य महोदय मुस्कराते हुए बोले।

“नहीं ! हिन्दू तो उन्हें विष्णु का अवतार मानते हैं”, अशोक ने उत्तर दिया। “वे नास्तिकों और अनीश्वरवादियों में मौजूद अधर्म को समाप्त करने के लिए धरती पर अवतरित हुए थे।”

इंटरव्यू बोर्ड के एक सदस्य ने व्यवस्था दी, “इनका यह कहना है कि गौतम बुद्ध भगवान् विष्णु के दसवें अवतार थे तथा उनका अवतरण आजीवकों, चार्वाकवादियों और अनीश्वरवादियों द्वारा फैलाये जाने वाले ‘घोर भौतिकतावादी दर्शन’ अर्थात् वैदिक धर्म में वर्णित ‘अधर्म’ को समाप्त करने के लिए हुआ था।

“जी!”, अशोक ने ‘हाँ’ की मुद्रा में सिर हिलाया।

“आपका यह भी मानना है कि बौद्ध धर्म का आन्दोलन वैदिक धर्म के विरुद्ध नहीं था।”

सदस्य के इस निष्कर्ष पर अशोक कुछ कहता, इससे पहले ही उन्होंने मुस्कराते हुए अशोक साक्षात्कार समाप्त करने का इशारा किया।

लेकिन, सबसे बुरा तो जगत रत्नाकर के साथ हुआ था। उससे पूछा गया कि राम जन्मभूमि और बाबरी विवाद पर उसकी क्या प्रतिक्रिया है।

रत्नाकर ने उत्तर दिया-“वहां यकीनन अति प्राचीन राम जन्मभूमि मंदिर ही था, जिसे तोड़कर बाबरी बनाई गई थी।”

बोर्ड के एक सदस्य ने उनसे अपनी राय के पक्ष में दलील देने के लिए कहा।

रत्नाकर ने सवाल के रूप में उत्तर दिया, “हजारों सालों से लाखों हिन्दू प्रतिवर्ष अयोध्या तीर्थाटन के लिए जाते थे। अगर वहां राम जन्मभूमि नहीं होती तो क्यों जाते?”

“लेकिन उसी स्थान पर राम जन्मभूमि मंदिर था, इसकी पुष्टि कैसे होगी?”, एक सदस्य ने पूछा।

रत्नाकर ने उत्तर दिया- “अगर अयोध्या, राम जन्मभूमि है तो वहां कहीं न कहीं राम जन्मभूमि का मंदिर भी होना चाहिए। मान लीजिये अगर वर्तमान बाबरी वाली जगह पर राम जन्मभूमि मंदिर नहीं था तो कहीं और होना चाहिए? अगर नहीं है तो इसका मतलब है जहाँ आज बाबरी है उसी स्थान पर पूर्व में जन्म स्थान मंदिर भी था।”

एक सदस्य ने प्रश्न किया, “आप यह कैसे कह सकते हैं कि बाबरी मस्जिद वाले स्थान पर ही कोई प्राचीन मंदिर था? अगर बाबरी के समय वहां जो मंदिर रहा होगा वह भी दो-तीन हजार साल पुराना तो कतई नहीं होगा। अधिक से अधिक चार-पांच सौ वर्ष प्राचीन रहा होगा। अयोध्या में दो हजार वर्ष पूर्व कोई हिन्दू आस्था से जुड़ा मंदिर या धर्म स्थल था यह कैसे सिद्ध करोगे?” “एक सवाल और..... वह स्थान जिसे हम अयोध्या कहते हैं वही स्थान त्रेता युग की अवधपुरी थी यह कैसे सिद्ध होगा?” एक दूसरे सदस्य ने एक अन्य सवाल जोड़ा।

“यह तो सर्वविदित है कि यह स्थान ही श्री राम की जन्मस्थली ‘अवधपुरी’ है, हजारों वर्षों से हिन्दू तीर्थयात्री इस स्थान

पर तीर्थाटन के लिए वहां जाते हैं। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि यहाँ हिन्दू मंदिर रहे होंगे”, रत्नाकर ने उत्तर दिया।

‘कोई शिलालेख, कोई अभिलेख, कोई मूर्ति या मंदिर, धर्म चिन्ह जो कमसे कम दो हजार सालों पुराना हो तो बताओ?’

रत्नाकर कुछ कहता इसके पूर्व ही एक सदस्य ने अपनी राय दी- “हमें पता है, तुम रामायण का हवाला दोगे, लेकिन, इतिहास नहीं मानेगा, उसे साक्ष्य चाहिए, जो कि तुम्हारे पास नहीं है, दरअसल साक्ष्य तो किसी के पास नहीं है।” और इसके साथ ही उसका साक्षात्कार समाप्त हो गया।

इस प्रकार इंटरव्यू में अपने स्वतंत्र विचारों को अभिव्यक्त करने का खतरा उठाने और उसकी कीमत चुकाने के बाद ये तीनों महापुरुष ‘हम नहीं सुधरेंगे’ वाले तर्ज पर संगम तट पर बैठे कसमें खा रहे थे कि ‘अब जीवन में सिविल सर्विसेज के इम्तिहान में दुबारा सम्मिलित नहीं होंगे’।

इन तीनों में अशोक की दिलचस्पी राजनीति में थी। वह किसी राजनीतिक दल का प्रवक्ता बनना चाहता था। शाही वापस लौट कर अपने पिता के बिल्डिंग के कारोबार को आगे बढ़ाने की योजना बना रहा था।

लेकिन, जगत रत्नाकर की योजना वर्तमान राम जन्म स्थली अयोध्या को त्रेतायुगीन अवधपूरी सिद्ध करने के लिए ठोस पुरातात्विक साक्ष्यों की तलाश करने की थी।

त्रिवेणी के पवित्र जल से आचमन कर तीनों गंगा तट पर अकबर के किले के पास मौजूद बड़े हनुमानजी का दर्शन करने के हेतु आगे बढ़े। जगत रत्नाकर ने बड़े हनुमानजी के समक्ष अपने संकल्प को रखा और मन ही मन उनका आदेश प्राप्तकर मंदिर से बाहर आया और फिर उसने अपनी योजना दोनों मित्रों को बतायी।

शाही और अशोक को जगत रत्नाकर की योजना में कोई खास दिलचस्पी नहीं थी किन्तु दोनों ने यह सोचकर कि सिविल सर्विसेज की परीक्षा में असफल होने के बाद क्यों न कहीं घूम फिर कर थोड़ा मूड बदल लिया जाए, रत्नाकर की योजना में शामिल होने की अपनी सहमती दे दी।

लेकिन रत्नाकर गंभीर था और उसकी यही गंभीरता उसे संगम पर बड़े हनुमानजी के पास ले गई थी। उनके दर्शन के बाद अब उसने किसी पूर्व योजना के, बिना किसी रोड मैप के बीस दिनों के अन्दर प्रयागराज छोड़ने की तैयारी कर ली थी।

रत्नाकर की कार्य योजना के केंद्र में वे अतीत के प्रसिद्ध तीर्थयात्री थे जो कभी अयोध्या गए थे और उन्होंने अपने यात्रा वृत्तांत में अयोध्या के बारे में कुछ लिखा था। रत्नाकर को यकीन था कि यहीं से कोई रास्ता निकलेगा।

उसे पुरानी पांडुलिपियों के अध्ययन से एक महत्वपूर्ण जानकारी मिली थी कि ब्रजमंडल में निवास करने वाले दशनामी संप्रदाय के एक युवा संत जिसका नाम गोसाईं घमंडी गिरी था, 1570 ईसवी में जब अमृतसर स्थित आदि तीरथ तथा दुर्गियाना मंदिर के दर्शन के लिए गए थे, वहां के सिख संत ने उन्हें अयोध्या के इतिहास से संबंधित कोई बहुत ही महत्वपूर्ण साक्ष्य सौंपा था तथा उन्हें निर्देश दिया था कि वे इस साक्ष्य को सकुशल अयोध्या के किसी सुरक्षित स्थान तक पहुंचा दें।

गोसाईं घमंडी गिरी वही संत थे जिन्होंने तीर्थाटन के क्रम में बिहार की प्रसिद्ध मोक्षस्थली गया में महाबोधि मंदिर के ठीक सामने दशनामी मठ की स्थापना की थी तथा बौद्ध धर्म के पतन के बाद इसी मठ के संतों और साधुओं ने बहुत लंबे समय तक महाबोधि मंदिर और इसके आसपास के बौद्ध मठों की सुरक्षा की थी।

जिस समय ये तीनों महापुरुष संगम तट पर बैठे प्रयागराज से निकलने की योजना को अंतिम रूप दे रहे थे, ठीक उसी समय संगम पर बने रेलवे पुल से इस कहानी के चौथे पात्र अर्जुन तिग्गा की ट्रेन प्रयागराज में प्रवेश कर रही थी।

उरांव जनजाति में जन्में अर्जुन तिग्गा के पिता की मृत्यु तो दिल्ली में हुई थी, किन्तु उसकी योजना पिता के अस्थिकलश को त्रिवेणी में प्रवाहित करने के उपरांत अंतिम क्रिया-कर्म के लिए झारखण्ड के गुमला स्थित अपने पुस्तैनी गाँव आंजन ग्राम जाने की थी।

भारतीय पुरातत्व विभाग में बतौर असिस्टेंट काम करने वाला अर्जुन तिग्गा एक अच्छा फोटोग्राफर और प्राचीन भारतीय लिपियों का विशेषज्ञ था। लेकिन, फिलहाल वह एक ऐसा व्यक्ति बन चुका था, जिसका दिमाग हजारों साल पहले मरे लोगों और जानवरों की सूखी हड्डियों और बेजान पत्थरों पर लिखी गई पुरानी भाषाओं को पढ़ते-पढ़ते उकता गया था। अब वह सरकारी नौकरी छोड़कर जिन्दा लोगों के बीच रहकर जिंदगी में कुछ ठीक-ठाक काम करना चाहता था।

यह महज इत्तेफाक था कि अपने मौजूदा हालात से ऊबे चार लोग एक ही समय पर प्रयागराज के संगम तट पर उपस्थित थे, किन्तु विधाता की योजना उन्हें संगम पर मिलाने की नहीं थी।

ईसवी सन 2016
अंजन ग्राम, गुमला, झारखण्ड

झारखण्ड के गुमला से सोलह किलोमीटर दूर आंजन ग्राम में उरांव जनजाति के लगभग पचास परिवार सदियों से निवास करते थे। अर्जुन तिग्गा का जन्म इसी गाँव के एक आदिवासी में हुआ था। उसका भी बचपन इसी उरांव जनजाति बहुल गाँव में बिता था तथा उसकी बारहवीं तक की स्कूली शिक्षा भी गाँव के पास के ही सरकारी हायरसेकण्ड्री स्कूल में ही हुई थी।

दिल्ली में पिता के निधन के बाद पिता की अंतिम इच्छा के अनुसार उनका अंतिम क्रियाकर्म गाँव में ही करने के उद्देश्य से अर्जुन तिग्गा लगभग दस वर्षों के बाद वापस आंजन ग्राम लौटा था।

जब हम वर्षों बाद अपने गाँव लौटते हैं तो सोचते हैं कि सबकुछ वैसा ही होगा, जैसा कि हम छोड़ कर गए थे, लेकिन ऐसा नहीं होता। काफी कुछ बदल जाता है। यँ तो आदिवासियों के गाँव सदियों तक नहीं बदलते, लेकिन मौजूदा दौर ही कुछ और हैं। झारखंड के गुमला जिले के मुख्यालय से 16 मिल दूर आंजन ग्राम की तस्वीर तेजी से बदल रही थी। जो आदिवासी थे, वे आदिवासियों

की तरह दिखना नहीं चाहते थे, और जो नहीं थे, वे आदिवासी बनने के लिए कट-मर रहे थे।

पिता के क्रियाकर्म कार्यक्रम की समाप्ति के बाद उसे थोड़ा वक्त मिला तो वह अपने घर से बाहर निकला, यह सोचकर कि अपने गाँव को एक नजर भर देख लूँ, पता नहीं, फिर कब आना हो, या फिर न भी हो।

अब गाँव जितनी तेजी से बदलते हैं उतनी तेजी से शहर भी नहीं बदलते। लेकिन, फिर भी, कुछ चीजें थोड़े-बहुत बदलाव के साथ वैसी ही रहती हैं, जो स्मृतियों को ताजा रखती हैं; जैसे गाँव के पुराने मंदिर, नदी तट और स्कूल की पुरानी इमारतें !

जब आप अपने बचपन के स्कूल के पास से गुजरते हैं तो दोस्तों के अलावा एक चेहरा, एक नाम अक्सर याद आता है। वह चेहरा अक्सर उसका होता है जिसका नाम आपने किशोरावस्था की दहलीज पर कदम रखते के दौर में स्कूल की मेज पर कम्पास की नोंक से उकेरा था। वह नाम उनका होता है जिन्हें तब लिखने वाले न बता पाए थे, और न चोर नज़रों से पढ़ने वाले जता पाए थे!

अपने पुराने स्कूल के पास से गुजरते वक्त वह पल भर के लिए वह ठिठका..... स्कूल के गेट के पास खड़े होते ही उसके हृदय में वर्षों से सुसुप्त पड़े प्रेम के बीज पुनः अंकुरित होने लगे। झारखण्ड के ग्रामीण इलाकों में मौजूद अन्य हायरसेकण्ड्री विद्यालयों की तुलना में उसके गाँव के पास का यह विद्यालय कई मामलों में बेहतर था। स्कूल की लाइब्रेरी में विश्व साहित्य की सैकड़ों किताबें थी।

उसीकी कक्षा में पढ़ती शिउली अपने माता पिता कि इकलौती संतान थी। साहित्य और किताबों में दोनों की दिलचस्पी उन्हें करीब लाई थी। दोनों स्कूल की छुट्टी के बाद घंटों लाइब्रेरी में बिताते-लेकिन बतियाते कम लड़ते ज्यादा। उनकी आपसी जंग में किताबी भाषा का गाहे-बगाहे समावेश हो जाता।

इधर उनकी बारहवीं का अंतिम सत्र था और उधर सावन में उसका सत्रहवां लगा था। सांवले रंग के अर्जुन तिग्गा के शरीर पर

यौवन फूटा तो खूब फूटा था । उसकी हंसी में अद्भुत सम्मोहन था लेकिन वह हँसता बहुत कम था ।

एक घटना उसके ज़ेहन में ऐसे कौंधी जैसे कल की बात हो । उस दिन जब पुस्तकालय की पिछली बेंच पर बैठी शिउली ने उसकी उसके सिर पर एक हल्की सी चपत लगाई थी और उसने गुस्से पलट कर उसकी तरफ देखा था । अचानक सारा घटनाक्रम उसकी आँखों में किसी किसी चलचित्र की भांति चलने लगा ।

उसके गुस्से को नजरअंदाज करते हुए ठीठतापूर्वक बोल पड़ी थी, “नाराज क्यों हो रहे हो?” उसकी बातें सुनकर अर्जुन का पारा और भी चढ़ गया । उसका लाल चेहरा देख शिउली धीरे से फुसफुसाते हुए बोली, “दुष्ट व्यक्ति का रोम-रोम कभी भी खिलखिला कर हंस नहीं सकता ।”

उसकी बातें सुनकर अर्जुन के चेहरे पर एक हलकी सी मुस्कराहट तैर गई, “मुस्कराहट एक सम्मोहन है । इसका प्रयोग संभलकर करता हूँ।”

“ज्यादा डींग मत हाँकों! कल रात लिखा था इसे । तुम्हारे जैसे घमंड में डूबे पुरुषवादियों को केंद्र में रख कर ही लिखा है”, शिउली आँखें तरेरते हुए बोली ।

अर्जुन तिग्गा ने उसके हाथ से कॉपी ले ली और कविता को ध्यान से पढ़ने लगा ।

“स्त्री और पुरुष

मैं मीठे जल की नदी हूँ
मैंने नदियों, पहाड़ों जंगलों को
दौड़ते हुए लांघा है ।
तुम विशाल समुद्र हो,
खारे जल से भरे,
युगों-युगों से ठहरे... । ।
मुझे रुकना नहीं आया
तुमने चलना नहीं सिखा ।”

“क्या तुम पुरुषों के बारे में अपनी राय नहीं बदल सकती?”, कविता को पूरा पढ़ने के बाद उसने प्रश्न किया।

उत्तर में शिउली ने शरारत भरी नज़रों से उसे देखते हुए धीरे से ‘ना’ की मुद्रा में अपना सिर हिलाया, और पूछा, “ईश्वर ने हंसने का वरदान सिर्फ मनुष्य को दिया है। क्यों दिया?”

“मुझे क्या पता?”, अर्जुन खीझते हुए बोला।

“क्योंकि उसे यकीन था कि मनुष्य इस खुबसूरत धरती को अपनी मुस्कुराहटों से अद्भुत बना देंगे। लेकिन, उन्होंने इस दुनिया को अपनी नफरत और क्रोध से नर्क बना दिया”, शिउली ने उत्तर दिया।

“तुम आम लड़कों की तरह क्यों नहीं हो?”, उसदिन शिउली ने उससे एक प्रश्न किया था और, अर्जुन के होठों से हलकी सी फुसफुसाहट निकली थी, “हम और तुम अलग हैं। हमारी मंजिलें अलग हैं। तुम प्रेम में डूबी हुई एक अप्सरा हो और मैं चट्टान पर अपनी तलवार तेज करता एक सैनिक!”

उसका उत्तर सुनकर एक लम्बी आह भरते हुए शिउली ने गंभीर स्वर में कहा था, “मैं ईश्वर से प्रश्न करूंगी कि उसने मुझे तुमसे प्रेम होने ही क्यों दिया?”

.....और तब उसने उसने शिउली की तरफ देखते हुए प्रश्न किया था, “क्या तुम्हारा ईश्वर कभी अपनी गलती स्वीकार करेगा?”

“मेरा ईश्वर तुम्हारी तरह दम्भी नहीं है। वह मुझे ‘सॉरी’ भी बोलता है। वह मेरे उलाहने भी सुनता है और मेरी नाराजगी भी सहता है। वह मुझे अपना अबोध शिशु समझता है”, शिउली ने भी उसकी आँखों में अपनी आँखें डालते हुए उत्तर दिया था।

“विज्ञान ने ईश्वर के अस्तित्व को नकार दिया है। यह तुम्हारा भ्रम है कि ईश्वर तुम्हारी बातें सुनता है। दो और दो चार होता है। सोडियम और क्लोराइड को मिला देने से नमक बनता है। किसी वस्तु को आग पर रखने पर वह गर्म हो जाती है। हर चीज हर घटना किसी न किसी वैज्ञानिक नियम से बंधी हुई है।

इन्हें तुम्हारा तथाकथित ईश्वर भी नहीं बदल सकता।” अर्जुन ने प्रतिकार किया।

“अर्जुन, वाकई में सभी चीज इतनी वैज्ञानिक नियम से बंधी हुई है, तो हम भविष्य के घटनाओं की गणना क्यों नहीं कर पाते, तुम्हारा विज्ञान गणना करके यह क्यों नहीं बता पाता कि अगले पल क्या होने वाला है?”, उसने तीखा सवाल किया था।

“क्योंकि, इंसान को अभी विज्ञान की दुनिया में बहुत कुछ जानना बाकी है”, अर्जुन ने झिझकते हुए उत्तर दिया था।

“जब बहुत कुछ जानना बाकी है तो यह दावा कैसे कर सकते हों कि ईश्वर नहीं है? इस ब्रह्माण्ड का कोई भी कोई भी कोना जब तक मनुष्य के ज्ञान की पहुँच से बाहर है, तब तक तुम्हारा ईश्वर के न होने का दावा करना गलत है।”, शिउली ने तर्क दिया था।

“एक स्त्री पुरुष के चेहरे की तरफ न देखते हुए भी उसे पढ़ लेती है। लेकिन, तमाम उम्र स्त्री के चेहरे को ताकता पुरुष उसके के बारे में रत्ती भर भी जान नहीं पाता। अर्जुन की अवस्था भी कुछ ऐसी ही थी। वह हार कर वह बोला था, “यकीन नहीं होता कि तुम इतनी गंभीर सोच रखती हो।”

.....और तब, शिउली ने कहा था, “ईश्वर एक अनुभूति है। अगर तुम्हें यह अनुभूति नहीं होती है तो तुम नास्तिक हों। लेकिन, तुम कभी किसी भी क्षण उसे अपने इर्दगिर्द महसूस कर सकते हो।”

“मुझे नहीं लगता, कभी ऐसा होगा!”, अर्जुन के शब्दों में दृढ़ता थी।

“मुझे नहीं पता, ऐसा कब होगा; लेकिन जब भी होगा तब तुम बौरा जाओगे। पागलों की तरह उसे खोजते फिरोगे।” शिउली के स्वर में ‘चुनौती’ का भाव था।

गाँव छोड़ दिल्ली जाने के दो दिन पूर्व अर्जुन कोयल नदी के किनारे खामोश बैठा था। पास ही बैठी शिउली नदी के जल में छोटे-छोटे कंकड़ फेंककर बनते बिगड़ते भंवरो को अलपक निहार रही थी।

शिउली ने अचानक निस्तब्धता तोड़ते हुए कहा था, “अर्जुन, मैंने कहीं पढ़ा है, अगर सुदूर अंतरिक्ष से पृथ्वी की तरफ देखोगे तो अपने गाँव के किनारे-किनारे बहती छोटी सी यह नदी तुम्हें किसी नीलपरी की आँखों से ढलकते आसुओं की धार की तरह दिखेगी। पहाड़ों से उतरती नदी की तेज रफ्तार और समुद्र में मिलती नदी का ठहराव एक स्त्री की ‘चंचलता’ और ‘गंभीरता’ का प्रतिबिम्ब है।”

अर्जुन आज अस्वभाविक रूप से मौन था और उनका हृदय आज शिउली की किसी भी बात का उपहास करने का नहीं था। आज शिउली से विदा लेने का वक्त था। वह सोच रहा था कि पिता के पास दिल्ली जाने का निर्णय वह शिउली को कैसे बताये।

वह अपनी बातों का निहितार्थ परोक्ष रूप से उसे जताते हुए धीरे से बोला था, “नदी एक स्त्री है। स्त्री का चित्त ही चंचल होता है, वह कहाँ कभी एक जगह ठहरती है? नदी को अगर ऊँचें पर्वतों से प्रेम होता तो वह जलप्रपात बन इन घाटियों में क्यों उतरतीं। अगर उसे घाटियों से प्रेम होता वह सागर तक जाने का रास्ता क्यों तलाशती? नदी किसी एक के पास कभी नहीं ठहरती, नदी और नारी तो चिरचंचला हैं। गम्भीरता उनके स्वभाव में नहीं!”

.....फिर उसने बेहद चालाकी से गाँव छोड़कर जाने की बात कह दी थी- “मेरा दावा है तुम भी मुझे भूल जाओगी जब मैं कुछ वर्षों बाद वापस गाँव लौटूंगा तो तुम मुझे इस गाँव में नहीं मिलोगी।”

इस तरह उसने शिउली पर अपने गाँव छोड़ने का अपना इरादा जाहिर कर दिया था। इसके बाद वह अपनी भविष्य की योजनाओं के बारे में उसे बताता रहा और शिउली खामोश के साथ उसकी बातें सुनती रही।

“सचमुच लौटोगे कभी?” उसके भाव में अजीब सा दर्द था।

अर्जुन ने हिम्मत जुटाकर कहा था, “शायद नहीं!”

इसके साथ ही एक खामोशी ने सारे वातावरण को घेर लिया।

लेकिन अचानक शिउली बोल पड़ी थी, “उस बांसुरी वाले ने पहाड़, जंगल, मैदान और सागर बनाये, किंतु, जब उसने नदी बनायी तो

उसे नदी से प्रेम हो गया। एक दिन वह धरती पर आया....नदी से मिलने यमुना के तट पर गायों को चराने के बहाने.....”

अर्जुन खामोश रहा। किन्तु शिउली अपनी ही धुन में थी, “मुझे यकीन है तुम वापस लौटोगे और तब वापस जाने के लिए नहीं लौटोगे।

दस सालों बाद वह सचमुच गाँव वापस लौटा था। लेकिन, उसके वापस लौटने का दावा करने वाली वहाँ नहीं थी।

बहुत अच्छी स्मरणशक्ति इन्सान को दिमागी तौर पर फितूरी बना सकती है। इसीलिए, शायद ईश्वर हमारे मस्तिष्क से पूर्व जन्म की यादें मिटा देता है।

वह थोड़ी देर तक यँ ही किसी अजनबी की तरह अपने ही गाँव में घूमता रहा, फिर उसके कदम अनायास ही कोयल नदी की ओर बढ़ गए।

नदी तट पर कुछ युवा चेहरे पाश्चात्य शैली में नृत्य करते हुए किसी लोकप्रिय गीत की पृष्ठभूमि में रील बना रहे थे। उन्हें देख उसे अपने बचपन के दिनों की उरावं स्त्रियाँ याद आयीं और सूर्योदय के साथ ही गूँजते बिना हस्ताक्षर वाले उनके अविरत लोकगीत याद आये, जिनसे सदानीरा के जल की तरह निरंतर जीवन संगीत प्रवाहित होता था। ये वो गीत थे जिन्हें सदियों पहले रचा था उसके गाँव की अनपढ़, गवांर, घरेलू स्त्रियों ने, ढेकी पर धान कूटते हुए, आँगन में धान पसारते हुए या भिनसारे गोबर से आँगन लीपते हुए।

अर्जुन के स्मृतिपटल पर एक बार फिर से शिउली का चेहरा उभर आया और उसके शब्द हृदय के किसी अनजाने कोने में अटखेलियाँ करने लगे। उसे लगा मानों वह बावरा हो जायेगा।

“पता नहीं कहाँ होगी वह वाचाल?”, उसके ज़ेहन ने पलट कर उत्तर दिया- “कहीं किसी को अपने तकों से पागल बना रही होगी!” उसे लगा मानों आस-पास शिउली की सुगंध आज भी महक रही हो।

अचानक उसके कंधे पर किसी ने अपना हाथ रखा। उसने चौक कर पीछे देखा

“पहचाना?”, आगंतुक की बोलती आँखों ने प्रश्न किया।

अर्जुन के ललाट पर सोच की तीन सीधी रेखाएँ खिंच गईं।

“दयाल?”, उसके होठों से शब्द फूटे।

अजनबी हंसा, “चलो, पहचान तो लिया! चाचाजी के निधन की खबर मिली, बहुत दुःख हुआ। हम सब तुम लोगों से मिलने के लिए पगलाए रहते थे। लेकिन तुम तो शहर जाते ही हमें भूल गए—न खुद आये न चाचाजी को आने दिया।”

“बाकि सब कैसे हैं?”, उसने बात बदलते हुए प्रश्न किया।

“बाकि सब मतलब?, क्या शिउली?”, दयाल हंसा।

वह खामोश रहा, कुछ नहीं बोला।

“किसी को नहीं पता वह कहाँ है। शंख नदी पर डैम बनने के बाद सबकुछ तितर बितर हो गया है। यहाँ के आधे युवा मजदूर बनकर दूसरे राज्यों में चले गए हैं और आधे विस्थापित होकर दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं”, दयाल के शब्दों में निराशा के भाव थे।

वह खामोश रहा, कुछ नहीं बोला।

“माता-पिता के गुजरने के बाद से वह अपने चाचा के साथ रहती थी। फिर एक दिन वह अचानक गायब हो गई। उसके गायब होने के दो महीने बाद उसके चाचा की झोपड़ी की जगह पक्का मकान बन गया।”, दयाल उदास स्वर में बोला।

अचानक दयाल की भाव-भंगिमा बदल गई और उसके के स्वर में हिंसक पशु जैसी गुर्राहट शामिल हो गई, “हमारी बेटियाँ शहरों में बेचीं जा रही हैं। कारपोरेट ने सरकार के साथ मिलकर हमारा सबकुछ हड़प लिया है। दूर दूर तक फैले बंजर जमीन की तरफ देखो। देखो, तेजी से गायब होते पहाड़ों, मिटते जंगलों और सूखती कोयल की तरफ! देखो, इन बेजुबान जानवरों की तरफ जो जल्दी ही विलुप्त हो जाएंगे। नदियों, पहाड़ों, जंगलों, घाटियों और खूबसूरत वन्य जीवों से सजा हमारा जन्म स्थान एक दिन वीरान हो जाएगा और बची रह जायेगी दूर तक फैली मरघट जैसी वीरान

जमीन जिसमें बड़े-बड़े गड्ढों में सिर्फ लाल पानी भरा होगा और चारो तरफ बिखरी होंगी जानवरों और इंसानों की हड्डियाँ!”

अर्जुन ने सहमती की मुद्रा में धीरे से अपना सिर हिलाया ।

दयाल अचानक चिल्लाने लगा- “भाई! अगर उस मौत के तांडव और वीराने की कल्पना मात्र से तुम्हारी आंखों में खून नहीं उतरता, तुम्हारे बाजू नहीं फड़फड़ाते, तुम्हारे मुंह से गुर्राहट नहीं निकलती और तुम्हारे हाथों में बंदूक नहीं आता तो तुम्हारे जीवन पर धिक्कार है। तुम अपने पूर्वजों की उस महान संस्कृति के वारिस हो ही नहीं सकते, जिन्होंने हजारों सालों से इस समस्त क्षेत्र की सांस्कृतिक मर्यादा और भौगोलिक पहचान को बचा कर रखा था। अगर तुम उन पूर्वजों की विरासत और पहचान के लिए लड़ नहीं सकते, क्रोध से थरथराते हाथों में हथियार नहीं आते और तुम अपनी बन्दुक की तमाम गोलियां उनके शरीर में उतार नहीं देते जो इस पवित्र भूमि को अपवित्र कर रहे हैं।”

दयाल का अचानक इस तरह उत्तेजित हो जाना उसे अजीब लगा। थोड़ी देर के लिए तो उसे लगा मानो दयाल कोई स्क्रिप्ट पढ़ रहा हो। वह उसकी बातों से प्रभावित तो हुआ, किन्तु उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

थोड़ी देर बाद जब दयाल नार्मल हुआ तो बोला, “अभी मैं चलता हूँ, कल सुबह तुमसे तुम्हारे घर पर मिलूंगा, फिर चलेंगे कहीं आस-पास, पुराने दिनों की याद ताजा करने!”

अर्जुन ने सहमती की मुद्रा में धीरे से अपना सिर हिलाया ।

अगले दिन सुबह-सुबह दयाल अपनी स्कार्पियो लेकर आ गया ।

“कहाँ जाने का प्रोग्राम है?”, दयाल के बगल पास वाली सीट पर बैठते हुए अर्जुन ने प्रश्न किया ।

“रांची से थोड़ा आगे चांडिल!”, दयाल ने गाड़ी स्टार्ट करते हुए उत्तर दिया। अर्जुन ने अपना सिर सहमती की मुद्रा में हिलाया ।

लगभग तीन घंटे तक उनकी गाड़ी राष्ट्रीय राजमार्ग पर सरपट भागती रही। अब चांडिल कस्बे से काफी करीब थे।

आसपास के दृश्य बेहद सम्मोहक थे। पहाड़ों की न खत्म होने वाली श्रृंखलाओं को चीरती सामने स्वर्णरेखा नदी थी, और उसके किनारे एक छोटा सा मंदिर बेहद अद्भुत लग रहा था। अर्जुन इस दृश्य को देख सम्मोहित हो रहा था।

“छोटानागपुर के ये पठार भारतीय महाद्वीप के सबसे प्राचीन स्थल हैं। क्या तुम्हें पता है समुद्र से सबसे पहले निकलने वाला भारतीय प्रायद्वीप हिस्सा छोटानागपुर के पठार ही थे?”, उसने दयाल से प्रश्न किया।

लेकिन, दयाल उसके प्रश्न को नजरअंदाज करते हुए स्वर्णरेखा नदी के किनारे बने प्राचीन शिव मंदिर की तरफ इशारा करते हुए बोला, “सामने दिख रहा यह प्राचीन मंदिर हमारी आदिवासी संस्कृति के लिए बहुत बड़ा खतरा हैं। मेरा ध्रुपद दादा इस मंदिर का महंत है। जिस दिन वह मरेगा मैं उसी दिन मंदिर उजाड़ दूंगा, और इस मंदिर के अंदर मौजूद शिवलिंग को उखाड़कर स्वर्णरेखा में फेंक दूंगा।”

अर्जुन ने चौक कर दयाल की तरफ देखा। उसे दयाल से इस प्रकार के नफरती विचार की उम्मीद नहीं थी।

अर्जुन को अपने बचपन की एक पुरानी बात याद आ गई, दयाल के जन्म के समय की। इस प्राचीन शिव मंदिर की देहरी पर सिर पटकते हुए दयाल की माँ ने पुत्र की कामना की थी, और जब दयाल का जन्म हुआ था तब इसी मंदिर में कितना बड़ा भोज हुआ था।

“तुम्हारे दादा इस मंदिर में कब से रह रहे हैं?”, अर्जुन के प्रश्न किया।

“पांच वर्ष से ज्यादा हो गए। तब से, जब से हमारे घर में पहली बार क्रिसमस मना था। मैंने जब उन्हें समझाने की कोशिश की कि निर्जीव पहाड़ों, पत्थरों, नदियों और पेड़ों की टहनियों की पूजा करने वाले अनपढ़, गंवार लोग होते हैं। उस धर्म को मानो जिसे चर्च के विद्वान फादर, और योरोप के सभ्य समाज के लोग भी

मानते हैं। मेरी बातें सुनकर दादा भड़क गए और गुस्से में आकर उसी दिन घर त्याग दिया और इस मंदिर में झोपड़ी बना कर रहने लगे।”

प्रतिक्रिया में अर्जुन ने अफ़सोस जाहिर करने के अंदाज में धीरे से अपना सिर हिलाया। उसकी आँखों के सामने अपने गाँव का पुराना मंजर किसी चलचित्र की भांति चलने लगा।

झारखंड के इस सुदूर आदिवासी गांव में जीवन जितना सरल था उतना ही कठिन भी ! तब उरांव जनजाति के लगभग 2000 लोग उसके गांव में बसते थे। दयाल की जिंदगी की सबसे बड़ी घटना उसका जन्म नहीं बल्कि उसका अपने गांव से 5 किलोमीटर दूर एक क्रिश्चियन मिशनरी स्कूल में एडमिशन था। आज से लगभग 25 साल पहले जब उसे पहली बार अंग्रेजी स्कूल में नामांकन के लिए ले जाया गया तो उसके पिता का नाम साइमन नहीं, बल्कि सालखन तिग्गा था। दयाल के पिता निपट अनपढ़ थे, लेकिन माता ने दसवीं तक पढ़ाई की थी। वह पास के गुमला कस्बे से थी, जो विवाह के पूर्व किसी सरकारी अधिकारी के यहाँ घरेलु नौकरानी के रूप में बचपन से ही काम करती थी। जहाँ बड़े-बड़े अधिकारियों का आना जाना लगा रहता था।

उसकी इच्छा थी कि उसका बेटा पढ़-लिख कर बड़ा अफसर बने तथा परिवार की गरीबी को खत्म करें। इसलिए माता ने दयाल के पिता पर यह दबाव डाला कि वह उसका नामांकन किसी अच्छे अंग्रेजी स्कूल में करा दे।

दयाल जब 6 वर्ष का हुआ तो उसके माता-पिता उसे लेकर गुमला के क्रिश्चियन मिशनरी के स्कूल में गए।

लेकिन जब पति-पत्नी स्कूल के प्रिंसिपल से मिले तो उनका दिल टूट गया। प्रिंसिपल ने निहायत ही अफसोस के साथ बताया कि सारी सीटें भर चुकी हैं और नामांकन कार्य बंद हो चुका है।

प्रिंसिपल की बातें सुनकर दयाल की माँ की आँखें भर आयीं, और वह फूट-फूट कर रो पड़ी। फिर वह आद्र स्वर में बोली, “मैं आपके इस विद्यालय में झाड़ू लगाने से लेकर पैखाना को साफ

करने तक हर काम करने के लिए तैयार हूं, बस आप किसी तरह इसे अपने स्कूल में रख लीजिये।”

प्रिंसिपल साहब उनकी बातें सुनकर कुछ देर तक सोच में डूबे रहे, फिर द्रवित स्वर में बोले, “कक्षा एक में मसीही छात्रों के लिए आरक्षित सीटों में सिर्फ एक सीट खाली है। मैं आप लोगों से ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए बिल्कुल नहीं कहूंगा क्योंकि किसी की मजबूरी का फायदा उठाना बहुत ही गलत बात है। किसी को मजबूर करके उसे मसीही बनाने की इजाजत हमारा धर्म नहीं देता है। लेकिन, एक सुझाव दे सकता हूं कि आप बच्चे के नामांकन फार्म में अपने धर्म के रूप में ईसाई धर्म लिख दें। यह बात सिर्फ आपके और मेरे बीच ही रहेगी। अपने निजी जीवन में आपलोग जिस धर्म को मानते हैं उसको मानते रहें। हमलोग ऐसा सिर्फ बच्चे के भविष्य को ध्यान में रख कर कर रहे हैं। उम्मीद है हमारे दयालु प्रभु हमें क्षमा करेंगे”

दयाल के माता पिता ने प्रिंसिपल साहब के सुझाव को स्वीकार कर लिया, और इस प्रकार दयाल तिर्की का परिवार कागजी तौर ईसाई बन गया। इसके साथ ही दयाल की मां मारी को भी उसके पुराने अनुभव को देखते हुए स्कूल के चर्च में छोटी सी नौकरी मिल गई। लेकिन, समस्या अभी खत्म नहीं हुई थी।

एक दिन प्रिंसिपल साहब ने दयाल की माँ को ऑफिस में बुलाया और बेहद चिंतित स्वर में बताया कि उनके किसी शत्रु ने स्कूल के मुख्यालय में यह शिकायत की है कि मैंने तुम्हारे पुत्र का गलत तरीके से नामांकन कराया है। रांची से एक जाँच दल इसकी जांच के लिए आ रहा है। मुझे तुम्हारी मदद की आवश्यकता है, वरना ये लोग मुझे न सिर्फ मुझे नौकरी से निकाल देंगे और तुम्हारे बच्चे को भी विद्यालय से निकाल देंगे। मुझे अपनी चिंता नहीं है, लेकिन बच्चे का जीवन बर्बाद हो जायेगा।

“प्रिंसिपल साहब मुझे क्या करना होगा?”, दयाल को स्कूल से निकालने की बात पर उसकी माँ घबरा गई।

प्रिंसिपल साहब थोड़े सहज होते हुए बोले, “जब जांच दल के लोग लोग तुम्हारे घर पर जाएं उससे पहले तुम अपने घर से हिन्दू धर्म से संबंधित सभी चिन्हों को हटाकर वहां पर एक क्रॉस तथा जीसस और मदर मरियम की एक मूर्ति लगा देना।

प्रिंसिपल ने यह भी निर्देश दिया कि पति-पत्नी दोनों, चर्च में जाकर ईसाई धर्म से संबंधित क्रियाकलापों को भली भांति समझ लें, क्योंकि उनसे इससे सम्बंधित सवाल किये जा सकते हैं।”

जब जाँच कमिटी आयी तब दयाल के माता पिता ने ईसाई दम्पति का शानदार अभिनय किया। प्रिंसिपल साहब तो उनके अभिनय को देख फूले नहीं समा रहे थे। लेकिन जब निरीक्षण और जाँच की पुनरावृत्ति बार बार होने लगी तब पति-पत्नी ईसाई होने का नाटक करते-करते तंग आ गए और फिर एक दिन उन्होंने प्रिंसिपल की सलाह पर निर्णय लिया कि इस दिखावे से बेहतर है कि क्यों न हम सचमुच ही ईसाई बन ही जाएँ। उनके गाँव के कई परिवार पहले से ही ईसाई बन चुके थे और ईसाई बनने के बाद उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति में काफी सुधार हुआ था।

इस प्रकार सालखन तिग्गा अब साइमन तिग्गा बन गए। ईसाई बनने के बाद सालखन तिग्गा की जिंदगी में जबरदस्त बदलाव आया उसकी पूरी परिवार की आर्थिक स्थिति बेहतर होती चली गई।

लेकिन, एक नयी समस्या भी आ पड़ी। गाँव में उनके पड़ोस रहने वाले कुछ सरना आदिवासी परिवार उनसे घृणा करने लगे और रोटी-बेटी का सम्बन्ध खत्म कर उनका सामाजिक बहिष्कार करना आरम्भ कर दिया।

एक दिन दयाल की माँ ने प्रिंसिपल साहब के सामने अपनी समस्या रखी। प्रिंसिपल साहब ने मुस्कराते हुए सुझाव दिया, “जो लोग तुम्हारा विरोध कर रहे हैं, उनके बच्चों का भी नामांकन मसीही कोटे से इसी स्कूल में करवा दो, पांच वर्षों के अन्दर तुम्हारा सारा गांव ईसाई जायेगा।

फादर की भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। दस साल बीतते-बीतते उरांव जनजाति के इस गाँव में क्रिसमस की रंगीन बत्तियां

जगमगाने लगीं। उरांव जनजाति के इस आदिम गांव के पास बना नया चर्च अब पांच किलोमीटर दूर से भी देखा जा सकता था।

अचानक दयाल ने गाड़ी मुख्य सड़क से उतार कर कच्चे पहाड़ी रास्ते पर डाल दी। एक झटके के साथ अर्जुन की तन्द्रा टूटी। अनजान उबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते हुए वे करीब आधे घंटे बाद दलमा की चोटी तक पहुँच गए। इसके बाद अर्जुन ने एक स्थान पर अपनी गाड़ी रोकी तो सामने का मंजर देख अर्जुन चौक गया। सामने छोटे से समतल स्थान पर युवा आदिवासियों के एक समूह को हथियारों की ट्रेनिंग दी जा रही थी।

“मुझे कहाँ लेकर आ गए?”, उसने गुस्से से दयाल से सवाल किया।

“यहाँ अपने लड़कों को तीन महीने की कठिन ट्रेनिंग दी जाती है। उन्हें पहाड़ पर चढ़ना, रायफल और मशीनगन का इस्तेमाल करना, बम बनाना तथा गुरिल्ला युद्ध के सूक्ष्म गुर सिखाये जाते हैं”, दयाल ने गर्व के साथ उत्तर दिया।

उसकी बातें सुनकर अर्जुन ने असहज भाव से प्रश्न किया, “लेकिन, तुम मुझे यहाँ क्यों लाये हो?”

“... तुम मेरे दोस्त हो! मैं एक मुसीबत में फँस गया हूँ। इस विकट परिस्थिति में तुम ही मेरी मदद कर सकते हो।”, कहते हुए उसने अपनी सीट के नीचे से एक छोटा सा बैग निकाल लिया।

तभी उनके निकट दो बंदूकधारी आ गए। दयाल ने उनसे कुछ बातें की। उन्होंने सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया और दोनों को अपने पीछे-पीछे आने का इशारा किया।

दोनों जने रायफलधारियों के पीछे-पीछे एक छोटी सी गुफा में पहुँचें। अन्दर एक अधेड़ उम्र का आदमी डायरी में कुछ लिख रहा था।

दयाल ने एक लिफाफा उसके सामने टेबल पर रख दिया।

“कितना है?”, अधेड़ ने अपना सिर उठाए उससे पूछा।

“एक लाख!”, दयाल ने सहमे स्वर में उत्तर दिया।

“बाकी के कहाँ है?” अधेड़ उम्र के आदमी ने सिर उठाकर गुस्से से उसकी तरफ देखा, “तुम्हे तो पांच लाख लाने थे।”

“पुलिस के डर से मैंने चार लाख रुपये पिछले हफ्ते इसके पास रखा था, लेकिन अब यह रुपये लौटा नहीं रहा है। आज इसे बहला फुसलाकर कर आपके पास लाया हूँ।”, दयाल ने उत्तर दिया।

“क्या बकते हो! तुमने मुझे कब रुपये दिए?”, अर्जुन गुस्से से चिल्लाया।

अधेड़ व्यक्ति में अचानक कमर से पिस्तौल निकाल कर अर्जुन की कनपटी पर रख दिया और कड़कती आवाज में पूछा, “रुपये कहाँ हैं?”

अर्जुन को अपनी साँस रुकती हुई जान पड़ी। वह घबरा कर बोला, “इसने मुझे कोई रुपया नहीं दिया है।”

अधेड़ व्यक्ति ने दयाल से प्रश्न किया-“...और वह लड़की कहाँ है? तुम्ही उसे अपने साथ लेकर दिल्ली गए थे। उसके चाचा का आरोप है कि तुमने उसे बेच दिया है।”

दयाल ने अर्जुन की तरफ इशारा किया, “इसी की प्रेमिका थी। दिल्ली में मैंने उसे इसी के हवाले कर दिया था।”

“क्या तूने उसे किसी कोठे पर बेच दिया?”, अधेड़ व्यक्ति ने अर्जुन से प्रश्न किया।

हतप्रभ अर्जुन गुस्से से चिल्लाया, “इसने मुझे कोई लड़की नहीं सौंपी!, इसने मुझे कोई पैसा नहीं दिया!”

अधेड़ ने कुछ समय सोचने के बाद फैसला सुनाया-“ये दोनों मिले हुए हैं। इन दोनों को बरगद के पास ले जाकर गोली मार दो!” कुछ लोग उन्हें पकड़ने के लिए आगे बढ़े।

अर्जुन को अपनी साँस रुकती हुई जान पड़ी। उसने अचानक एक फैसला किया और जोर की एक लात अधेड़ के पेट पर मारी। अधेड़ के हाथ से पिस्तौल छिटक कर थोड़ी दूर जा गिरी। अर्जुन पलटकर गुफा से बाहर भागा। दयाल ने झपट कर जमीन पर पड़ी पिस्तौल उठा ली और अर्जुन के पीछे भागते हुए चिल्लाया, “रुक जा गद्दार!” उसने अर्जुन को निशाना बनाते हुए फायर किया। गोली सनसनाती हुई अर्जुन के सिर पास से गुजर गई। अर्जुन बदहवास होकर पहाड़ी के दूसरे छोर की तरफ भागा। अचानक

उसके सामने पहाड़ी का किनारा आ गया। उसने नीचे देखा-सैकड़ों फीट नीचे स्वर्णरेखा मंथर गति से प्रवाहमान थी।

अचानक एक दूसरी गोली उसके कंधे को छिलती हुई निकल गई। उसके उसने तड़प कर दयाल की तरफ देखा जो पागलों की तरह गोलियां चलाता हुआ उसी की तरफ आ रहा था।

अर्जुन ने तेजी से एक पहाड़ी की ओट ले ली और चिल्लाया, “दयाल तू मेरा बचपन का दोस्त है, मैं तुझे चार लाख रुपये दे दूंगा, तू इन्हें लौटाकर अपनी जान बचा लेना। लेकिन तुझे बताना होगा शिउली कहाँ है।”

उत्तर में दयाल चिल्लाया, “ठीक, तू सामने आ, मैं बताता हूँ।”

अर्जुन को अब दयाल पर रस्ती भर भी यकीन नहीं था। उसने एक पत्थर उठा कर सामने एक झाड़ी में फेंका। झाड़ी में हलचल हुई। दयाल ने निशाना लगा कर फायर कर दिया।

तभी दूर से कोई चिल्लाया, “दयाल उसे गोली मत मारना जिन्दा पकड़ कर दादा के पास ले चलो।”

लेकिन दयाल के इरादे कुछ और थे। वह अंतिम सबूत मिटा देने के लिए तत्पर था।

दयाल के धोखे से मर्माहत अर्जुन ने कभी नहीं सोचा था कि उसकी मौत इस तरह होनी थी।

उसे अनायास ही शिउली की कही एक बात याद आ गई। ‘सारी नदियां स्वर्ग से निकलती हैं और वापस स्वर्ग तक जाती हैं।’ उसने सोचा, दयाल की गोलियों से मरने से बेहतर है स्वर्णरेखा में कूद जाय। उसने हिम्मत बटोरी पूरी ताकत लगा कर खुद को उठाया और पहाड़ी से नीचे नदी में कूद गया।

ठीक उसी समय अर्धेड़ आदमी अन्य लोगों के साथ वहां आ गया। उसने दयाल से पूछा, “तेरा साथी कहाँ गया?”

दयाल अफ़सोस जताता हुआ बोला, “पहाड़ी से नीचे कूद कर मर गया।”

उत्तर में अर्धेड़ ने अविश्वास भरी नज़रों से दयाल की तरफ देखा और पूछा, “यह कौन था? क्या कोई इसे पहचानता है?”

उत्तर में दयाल बोला, “मेरे गाँव का था।”

तभी पीछे से कोई बोला, “यह परसों ही अपने पिता का अंतिम क्रिया-कर्म करने दस सालों बाद दिल्ली से गाँव वापस लौटा था।”

अधेड़ ने हैरत भरी नज़रों से दयाल की तरफ देखा, “तू तो कह रहा था कि तूने इसे पिछले हफ्ते रुपये दिए थे?”

दयाल के शरीर में एक हलकी सी झुरझुरी दौड़ गयी।

तुझे तेरी बेईमानी और गद्दारी की सजा देने के लिए क्या अब किसी पंचायत की जरूरत है? , अधेड़ ने दयाल से प्रश्न किया।

उत्तर में मौत को आसन्न जान दयाल अधेड़ के पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाने लगा परन्तु अगले ही पल दलमा की दुर्गम पहाड़ियाँ गोलियों की तड़तड़ाहट से गूँज उठीं।

अधेड़ ने सामने पड़ी दयाल की लाश की तरफ देखा और पहाड़ी से नीचे झाँकता हुआ अफ़सोस भरे स्वर में बोला, “इस बेईमान की वजह से एक निर्दोष मारा गया। इन दलालों ने पूरे आन्दोलन को कलंकित कर दिया है। उसने दस्ते को निर्देश दिया- “यहाँ से कूच करने की तैयारी करो। सीआरपीएफ कभी भी यहाँ धावा बोल सकती है।”

यूँ तो अर्जुन मौत को निश्चित मानकर पहाड़ी से नीचे कूदा था, लेकिन, स्वर्णरिखा की गोद में गिरे अर्जुन को मृत्यु ने अस्वीकार कर दिया, परन्तु जीवन ने भी उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं किया था। घायल अवस्था में वह किसी तरह तैरता हुआ नदी के तट तक पहुंचा और बेसुध हो गया।

पूस की रात का चौथा पहर उतार पर था। स्वर्णरिखा के तट पर सन्यासियों का एक छोटा सा जत्था जलते अलाव के इर्दगिर्द बैठा गहन ठंड से बचने की कोशिश कर रहा था।

काफी देर बाद बेसुध रहने के बाद जब अर्जुन की आँखें खुलीं तो पाया, चारो तरफ अँधेरा पसरा हुआ था। उसने अपने पैरों के पास बर्फ जैसी ठंडक अनुभव किया। उसका पैर अभी भी जल में ही था। वह घसीटते हुए नदी के जल से बाहर आया।

भूख से बेदम और ठंड से ठिठुरते अर्जुन तिग्गा के लिए कुछ दुरी पर जलता अलाव स्वर्ग की भांति सुखद लगा। उसने चोर नजरों से साधुओं के जत्थे की तरफ देखा। साधू अपनी धुन में मग्न थे।

उसने गमछे को अपने कान और सिर के इर्द-गिर्द लपेटा और काँपता हुआ जलते अलाव के पास आकर बैठ गया। लेकिन धीरे-धीरे उसका पूरा शरीर सुन्न पड़ने लगा।

मृत्यु जब करीब लगती है, तब जीवन भर की तमाम घटनायें एक-एक कर याद आने लगती हैं। गाँव के पास बहती कोयल नदी, माता-पिता, बचपन के संगी साथी और जंगल और जानवरों का शिकार सबकुछ एक-एक कर उसकी आँखों के सामने आने लगे। फिर उसे अपने मृत्युशैया पर पड़े अपने पिता की कही बात याद आयी- 'मृत्यु तो मरंगबुरु का आमंत्रण है। जब वह आए तो हृदय द्वार खोलकर उसका स्वागत करो और प्रभु चरणों में जीवन सौंपकर निश्चित हो जाओ।'।

अचानक उसे लगा जैसे उसकी आँखों के सामने तेजी से अँधेरा छा रहा हो। उसने खुद को संभालने की पूरी कोशिश की, किन्तु संभाल न सका और जलने अलाव के करीब लुढ़क गया।

मृत्यु न कहीं जाती और न कहीं से आती है, वह तो साथ ही चलती है। मौत आज भी उसके आस-पास ही टहल रही थी लेकिन आज उसका इरादा अर्जुन को अपने आगोश में लेने का नहीं था।

काफी देर बाद जब अर्जुन की आँखें खुली तो दिन का पहला पहर अपनी उठान पर था। सामने पहाड़ी पर धूप खिली हुई थी। उसने आस-पास देखा, सारे साधू उठकर जा चुके थे लेकिन उसके सामने फलों से भरी एक छोटी सी टोकरी पड़ी हुई थी। पास में ही एक गठरी में पुरानी धोती और गेरुआ कुर्ता पड़ा हुआ था। उसने

अपने शरीर के ऊपर पर हाथ फेरा, उसका शरीर एक पुराने मोटे कम्बल से लिपटा हुआ था।

धीरे-धीरे उठकर वह अपने पैरों पर खड़ा हुआ और किसी तरह नदी के किनारे पहुँचा। चेहरे पर ठन्डे जल से छींटे मारते ही उसकी चेतना थोड़ी जागृत हुई। उसने थोड़ा सा फल खाकर नदी का पानी पिया और लड़खड़ाते कदमों में सामने मंदिर की तरफ बढ़ा।

उसके मन में विचार आया, अगर ये साधू यहाँ नहीं होते तो शायद वह जिन्दा न होता। अगर यह मन्दिर नहीं होता तो ये साधू भी यहाँ क्यों आते।

मंदिर के गेट के ठीक बगल में एक छोटा सा कमरा बना था। कमरे के सामने वाली शिला पर एक कृशकाय वृद्ध अपने तीरों को धार दे रहा था।

ओह! यह ध्रुपद दादा हैं। एक पल के लिए उसने सोचा कि वह उनके पास जाकर अपना परिचय दे दे। लेकिन वह खामोश रहा और धीरे-धीरे कमजोर कदमों के साथ मंदिर के अन्दर प्रवेश कर गया।

यह शिव का एक बेहद प्राचीन मंदिर था। आसपास नागा साधुओं के छोटे-छोटे जल्ये अपनी योग साधना में लीन थे। इस समय मंदिर में आम श्रद्धालु नहीं थे।

वह प्राचीन शिवलिंग के सामने चुप-चाप खड़ा रहा। अचानक पीछे से किसी ने उसे हल्के से छुआ।

अर्जुन ने पलट कर देखा- ध्रुपद दादा थे।

“कौन हो तुम?” ध्रुपद दादा ने इशारे से पूछा।

अर्जुन कुछ नहीं बोल पाया।

ध्रुपद तिग्गा ने उसकी धोती और गेरुआ कुर्ते की तरफ ध्यान से देखा-“ओह,..... तो कल रात स्वर्णरिखा तट पर तुम्ही थे!”

ध्रुपद तिग्गा ने उसे अपने साथ चलने का इशारा किया।

अर्जुन चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। दोनों मंदिर के गेट के सामने बने छोटे से कमरे में पहुँचे।

“मैंने ही तुम्हारे लिए कपड़े और फल रखे थे। तुम नक्सली तो नहीं लगते वरना अब तक तुम्हारे साथी तुम्हें खोज कर वापस ले गए होते।” दादा ने पूछा, “कौन हो तुम? और यहाँ कैसे पहुंचे?”

अर्जुन से कुछ कहते न बना। “मैं ऊपर पहाड़ी से फिसलकर नदी में गिर गया था।”

“ओह बताना नहीं चाहते!, कोई बात नहीं। जब मन करे तब बता देना। वहां सामने एक छोटा सा जलसोता है। वहां जाकर स्नान कर लो। उसके बाद शिवालय चलना है”, ध्रुपद तिग्गा हँसे।

उसने किसी आज्ञाकारी बच्चे की तरह अपना सिर हिलाया।

कुछ देर बाद जब वह स्नान कर लौटा तो देखा, ध्रुपद तिग्गा चूल्हे पर से भात की हांडी उतार रहे थे।

उसे लौटा जानकर वे उठे और बोले, “चलो शिवजी को दंडवत कर लो। तुम्हारा ये जीवन उसी ने दिया है।”

उसके अनमने भाव से अपना सिर सहमती की मुद्रा में हिलाया।

ध्रुपद तिग्गा को उसके भाव भांपने में वक्त नहीं लगा, लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा।

इस समय अर्जुन के अनुसार कुछ भी नहीं हो रहा था। जब ध्रुपद तिग्गा ने उसे शिवालय के अंदर जाकर शिवलिंग के सामने दंडवत करने के लिए कहा, तो एक पल के लिए उसका नास्तिक मन विद्रोह कर उठा। बचपन से ही उसके मन में ईश्वर के अस्तित्व को लेकर दुविधा थी। ऐसे में ध्रुपद तिग्गा की बात मान लेना उसके विचारों के विरुद्ध था। लेकिन, ध्रुपद तिग्गा ने उसकी जान बचाई थी और अगर वह उनकी बात नहीं मानता तो उनके दिल को ठेस पहुंचने की पूरी संभावना थी। इसलिए उसने ध्रुपद तिग्गा की बात मान ली और शिवलिंग के सामने दंडवत हो गया।

शिवालय का फर्श बिल्कुल ठंडा था। जब वह शिवालय के फर्श पर दंडवत हुआ तो उसे अजीब सी शांति मिली। उसका मन हुआ कि कुछ देर वह फर्श पर यूँ ही पड़ा रहे। लेकिन, फिर वह अपनी इच्छा के विरुद्ध दंडवत मुद्रा तोड़कर उठ खड़ा हुआ।

उसके ठीक बगल में ध्रुपद तिग्गा योगासन की मुद्रा में बैठे थे। उनके चेहरे पर असीम शांति के भाव थे।

अर्जुन चुपचाप उनकी बगल में बैठ गया और उनके उठने का इंतजार करने लगा। इन्तजार करते करते धीरे-धीरे उसकी आंखें भी बंद होने लगीं और उसे लगा मानों उसके अन्दर किसी नदी का शीतल जल मंथर गति से कलकल की ध्वनि के साथ प्रवाहित हो रहा है। उसके बेचैन हृदय को असीम शांति का अनुभव हो रहा था।

ध्रुपद तिग्गा और अर्जुन काफी देर तक शिवलिंग के सामने ध्यान मुद्रा में बैठे रहे।

काफी देर बाद जब ध्रुपद तिग्गा ने अपनी आंखें खोली तो देखा उनके पार्श्व में अर्जुन आंखें बंद किये ध्यान मुद्रा में बैठा था। ध्रुपद तिग्गा ने इस मंदिर में ऐसी घटनाएं अक्सर होती देखी थी। बहुत सारे मतवाले युवा देखे थे, जो इस मंदिर की चौखट पर आने से पहले धर्म और ईश्वर का मजाक उड़ाते थे, लेकिन एक बार मंदिर के अंदर आ जाने के बाद उनमें अद्भुत बदलाव होता था।

ध्रुपद तिग्गा स्वयं भी इसी का उदाहरण थे। पहली बार जब वह इस मंदिर के प्रांगण में किसी चोर की तरह घुसे थे तो उनकी नीयत मंदिर में मौजूद कबूतरों को भोजन के लिए चुराना था, लेकिन, मंदिर के अंदर प्रवेश करते ही उनके अन्दर का शिकारी मर गया और वे धीरे-धीरे इस मंदिर से आध्यात्मिक रूप से जुड़ते चले गए। अब साठ वर्ष से ज्यादा हो गए थे, ध्रुपद तिग्गा को इस मंदिर में आते हुए। फिर, एक दिन वह अपने ही परिवार वालों की उपेक्षा का शिकार होकर वे अपनी मर्जी से इस मंदिर के स्थायी वासी बन गए। लोग उन्हें मंदिर का महंत मानते थे, लेकिन वह स्वयं को शिव का दास ही कहते।

अर्जुन के मन में अब गांव वापस लौटने की कोई इच्छा शेष नहीं बची थी। पिता की मृत्यु हो चुकी थी। दयाल की गद्दारी ने उसे अंदर तक हिला दिया था। शिउली कहीं खो चुकी थी। उसका पता बताने वाला भी मर चुका था। अब गांव उसके लिए अजनबी स्थान

था। उसने तय किया कि वह वापस दिल्ली लौट जाएगा। लेकिन, अब तक उसके साथ जो कुछ हो रहा था, उसमें उसकी कोई मर्जी नहीं थी।

मंदिर के ठीक सामने एक छोटी सी पहाड़ी पर बैठकर वह अपनी भावी योजनाओं पर विचार कर रहा था। उसी समय गांव से कोई खबर लेकर आया कि ध्रुपद तिग्गा के पोते दयाल की हत्या नक्सलियों ने कर दी है।

पोते की हत्या की खबर सुनकर भी ध्रुपद तिग्गा के चेहरे पर दुःख के भाव नहीं आये।

“आपको अपने पोते की हत्या का दुःख नहीं हुआ?”, अर्जुन ने पूछा।

ध्रुपद तिग्गा का चेहरा सपाट था। बोले, “पापी था! गाँव की मासूम लड़कियों को बहला-फुसलाकर बड़े शहरों के वेश्यालयों में बेचता था। उसकी माँ ने शिवजी से उसके जन्म की कामना की थी लेकिन जो लोग पैसे या किसी अन्य लोभ-लालच में धर्मांतरण करते हैं उनके साथ शायद ऐसा ही होता है।, दयाल मेरा एकलौता पोता था, इसलिए मुझे जाना पड़ेगा। गाँव से वापस आने में दो तीन दिन लग जायेंगे तब तक अगर तुम चाहो तो इस कमरे में आराम से रह सकते हो।”

अर्जुन ने सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

इसी समय अर्जुन के हृदय में एक भय उपजा। ‘दयाल उसके साथ गाँव से बाहर निकला था। हो सकता है, पुलिस उसे भी नक्सली घोषित कर उसकी भी तलाश कर रही हो। ऐसे में इस मंदिर से सुरक्षित जगह और कहीं नहीं हो सकता। उसके लिए तत्काल दिल्ली वापस लौटना भी खतरे से खाली नहीं होगा। गाँव में मौजूद उसके बैग में दिल्ली का उसका पता और दूसरे डिटेल्स थे, जिसे पुलिस ने बरामद कर लिया होगा। ऐसे में अगर वह वापस दिल्ली लौटता है तो यकीनन पुलिस के हथ्थे चढ़ जाएगा।’

इधर बूढ़े ध्रुपद तिग्गा ने एक पुराने झोले में अपने कुछ कपड़े डाले और अपनी लाठी टेकते हुए धीरे-धीरे अपने गांव की तरफ

निकल पड़े। लेकिन, उनके पैर काँप रहे थे- शायद यह उम्र का असर था। उनकी हालत देखकर अर्जुन का मन विचलित हो गया। उसने निर्णय किया कि वह ध्रुपद तिग्गा को अकेले गाँव नहीं जाने देगा, भले ही पुलिस उसे गिरफ्तार कर ले। आखिर, इसी की वजह से आज वह जीवित था।

ऐसा सोच कर अर्जुन भी ध्रुपद तिग्गा साथ-साथ चलने लगा। आरम्भ में ध्रुपद तिग्गा को लगा था कि वह उन्हें कुछ दूर तक छोड़ कर वापस आ जायेगा लेकिन जब अर्जुन वापस नहीं लौटा तो वे बोले, “अब तुम वापस लौट जाओ, इस सामने वाली सड़क से मुझे गुमला की बस मिल जाएगी.....” फिर, वह अर्जुन को सतर्क रहने की हिदायत देते हुए बोले, “इस इलाके में जंगली जानवरों से ज्यादा खतरनाक कुछ स्थानीय लोग हैं जो इस मंदिर के अस्तित्व को अपने धर्म के लिए खतरा मानते हैं, और वे किसी भी तरह इस मंदिर को खत्म कर देना चाहते हैं, इसलिए सावधान रहना।”

अर्जुन ने ध्रुपद तिग्गा से एक प्रश्न किया, “अगर भगवान सब की रक्षा करते हैं तो अपने ही मंदिर रक्षा क्यों नहीं कर पाते।”

ध्रुपद तिग्गा बोले, “हमें ईश्वर ने बनाया है इसलिए ईश्वर हमारी रक्षा करता है। लेकिन, मंदिर ईश्वर ने नहीं बल्कि हमने बनाया है। ईश्वर ने यह कभी नहीं कहा कि तुम मेरा मंदिर बनाओ। इसलिए यह मंदिर की रक्षा की जिम्मेदारी हमारी है।”

अर्जुन ने अनुभव किया कि ध्रुपद तिग्गा की भाषा और ज्ञान में काफी परिपक्वता आ गई है।

जब उसने पूछा कि वे अकेले इतने सारे लोगों का कैसे मुकाबला करते हैं तब ध्रुपद तिग्गा उसे आश्चर्य करते हुए बोले, “तुम यहाँ अकेले नहीं हो।”

“और कौन है यहाँ?” “अर्जुन ने चौकते हुए पूछा।

“है कोई भगवान का सेवक !”, ध्रुपद तिग्गा रहस्यमय भाव से बोले।

“कौन?” , अर्जुन ने आश्चर्य से प्रश्न किया।

“मुझे नहीं मालूम ! लेकिन हर संकट के समय उसकी उपस्थिति महसूस करता हूँ”, ध्रुपद तिग्गा बोले, “देखो तुम अब लौट जाओ। जिस रास्ते से तुम आये हो वह लम्बा रास्ता है। अगर इस पहाड़ी से उत्तर की तरफ बढ़ोगे तो मंदिर तक का रास्ता एक चौथाई हो जायेगा। इसके बाद उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ध्रुपद तिग्गा आगे बढ़ गये। अर्जुन के धीरे से अपना सर हिलाया और मंदिर की ओर वापस लौटने लगा।

जंगल की खूबसूरती आसपास बिखरी पड़ी थी। मार्च का महीना था। जंगल के पेड़ पलाश के फूलों से लदे हुए थे। अगर उसके पास कैमरा होता तो वह कुछ तस्वीरें जरूर लेता। कुछ देर चलने के उपरांत उसे थकान महसूस होने लगी। थोड़ी देर आराम करने के ख्याल से अर्जुन एक पेड़ की छाया में बैठ गया। थोड़ी देर में ही उसकी आँखें लग गईं।

अचानक किसी ने उसे झकझोर कर जगाया। उसने चौक कर आँखें खोली।

“अरे तुम गए नहीं?”, सामने ध्रुपद तिग्गा थे।

“आराम कर रहा था। थोड़ी आँख लग गई थी। लेकिन आप क्यों लौट आये?”, उसने चौकते हुए पूछा।

“सवारी नहीं मिली, बस वालों की हड़ताल चल रही है। अब कल ही जाना हो पायेगा”, ध्रुपद तिग्गा ने उत्तर दिया।

अर्जुन ने निराशा के भाव के साथ धीरे से अपना सिर हिलाया।

“तुम इस जंगल में अकेले गहरी नींद में सोये हुए हो। सांप, बिच्छू या जंगली जानवर के शिकार हो जाते। सावधान रहें। हर बार तुम्हें ईश्वर नहीं बचाने आयेंगे”, ध्रुपद तिग्गा धीरे से हँसे।

“पता नहीं क्यों मुझे भगवान् के होने पर यकीन नहीं होता!! और मुझे आपने बचाया था, किसी ईश्वर ने नहीं।”, अर्जुन बोला।

“तुम्हारे आस्तिक या नास्तिक होने से ईश्वर का होना या नहीं होना तय नहीं होता! ध्रुपद दादा कोमल भाव से बोले, “ब्रह्मांड के स्वामी को कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम उसके बारे में क्या सोचते

हो। आज विज्ञान बहुत विकसित है, फिर भी करोड़ों करोड़ों शिक्षित लोग दावा करते हैं कि ईश्वर का अस्तित्व है। 'ईश्वर' विज्ञान की सीमाओं से परे अंतर्मन की अनुभूति है।”

अर्जुन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

“उसे परिभाषित करना विज्ञान की सीमाओं से परे है। विज्ञान कभी नहीं जान पायेगा कि वह है कि नहीं”, ध्रुपद तिग्गा ने अपनी बात समाप्त की।

कुछ देर तक दोनों खामोशी के साथ चलते रहे। अर्जुन ने धीरे से ध्रुपद तिग्गा का झोला अपने कंधे पर लटका लिया। ध्रुपद तिग्गा ने भी प्रतिरोध नहीं किया।

यह लगभग दस किलोमीटर का सफ़र था। वे अगर स्वर्णरेखा नदी पार कर पहाड़ी के रास्ते से वापस लौटते तो सिर्फ़ चार किलोमीटर का सफ़र था, लेकिन ध्रुपद तिग्गा की अवस्था को देखते हुए उन्होंने दूसरा रास्ता चुना। यह भयानक जंगल से गुजरता हुआ लगभग पंद्रह किलोमीटर का सफ़र था, जो मंदिर के मार्ग को अत्यंत दुर्गम बना रहा था।

“दादा हम तो आदिवासी हैं।” रास्ता काटने के ख्याल अर्जुन ने फिर से बातचीत की शुरुआत की, “हम आदिवासियों का रिलिजन तो हिन्दुओं से काफी अलग है।”

ध्रुपद दादा उसकी आँखों में झाँकते हुए बोले, “रिलिजन एक तय नियम से बंधा होता है। उसके लिखित नियमों में थोड़ी भी फेरबदल नहीं हो सकती। किन्तु, धर्म तो निरंतर परिवर्तनशील है, वह आस्तिकता और नास्तिकता से परे ‘सर्वजन सुखायः’ की भावना पर आधारित होता है। हमारे सनातन धर्म में आस्तिक, नास्तिक, मूर्तिपूजक, प्रकृतिपूजक सभी हैं। इसमें वेद को मानने वाले भी हैं और नहीं मानने वाले भी!”

अर्जुन ने शंका व्यक्त की- “लेकिन, हम तो आदिवासी हैं। वैसे तो मैंने अपने पिता का क्रियाकर्म हिन्दू रीतिरिवाज से किया है। लेकिन एक प्रश्न मेरे मन में आज भी है कि कैसे मान लें कि हमारे पूर्वज उसी धर्म को मानते थे, जिसे आज आप और हम मानते हैं?”

‘पुत्र, सनातन किसी एक व्यक्ति या समुदाय के द्वारा विकसित धर्म नहीं है। इसमें सभी ने योगदान दिया है। सनातन धर्म में प्रचलित सिंदूर प्रथा, पहाड़ों और पेड़-पौधों की पूजा, चंद्रमा को देखकर तिथियों को गिनने की विधि, अनुष्ठानों में पान और सुपारी रखने का चलन, पुनर्जन्म, पितरों की पूजा, ग्राम देवता की पूजा जैसे महत्वपूर्ण संस्कार भारत के आदिवासी, आग्नेय और द्रविण परम्पराओं से आये हैं।’

“चलिए, आपकी बात को मान भी ले, लेकिन एक चीज में हम अलग हैं। वे तो स्वयं को ऋषियों की संतान कहते हैं। उनका एक गोत्र होता है। हमारा क्या?”, अर्जुन से शंका जाहिर की।

“वे ऋषियों की संतान हैं, लेकिन हम आदिवासी तो देवताओं की संतानें हैं।” ध्रुपद तिग्गा मुस्कराए।

“हम आदिवासी देवताओं की संतान हैं, फिर भी वे हमें अछूत समझते हैं”, अर्जुन ने परिहास किया।

“इस धरती का सबसे आदिम आदिवासी तो काशी में बसते हैं, उसके सामने तो सभी प्रवासी हैं”, ध्रुपद तिग्गा हँसे। अर्जुन ने पूछा, “वो कौन? शिव?”

ध्रुपद तिग्गा खिलखिलाकर कर हँसे, “शिव के सिवा कोई और भी है क्या इस ब्रह्माण्ड का सबसे आदिम आदिवासी?”

“उनके गोत्र ऋषियों के नाम पर और हम आदिवासियों के गोत्र जानवरों और पेड़ पौधों के नाम पर क्यों? !!” अर्जुन ने प्रश्न किया।

“सनातन धर्म में पशु-पक्षी ऋषियों से कम आदरणीय हैं क्या?”, ध्रुपद दादा ने अर्जुन की तरफ ही सवाल उछाल दिया।

अर्जुन खामोश हो गया।

“विष्णु के पांच आरंभिक अवतार मानव रूप में नहीं थे।” ध्रुपद दादा बोले, “उनका छठा अवतार वामन अवतार जो ब्याघसर में हुआ था तथा गंगा के किनारे इसी स्थान पर उन्होंने महाबली बली को अपनी समस्त भूमि दान करने के लिए प्रेरित किया था। तुम्हे पता है वह स्थान तुम्हारे गुमला से कितना नजदीक है? तुम यह क्यों नहीं

मानते की महादानी दैत्यराज बलि भी इसी क्षेत्र का सम्राट रहा होगा? यह सिर्फ कल्पना नहीं है, पुराणों का अध्ययन कर देखो, तुम आश्चर्य में पड़ जाओगे। जिस दैत्यराज बलि का प्रचंड पराक्रम समस्त ब्रह्मांड को अपने नियंत्रण में लेने को तत्पर था उनका निवास स्थान तो यही था.....जंगलों, नदियों और पहाड़ों से सुसज्जित अपना हरित प्रदेश !”

अर्जुन तिग्गा स्वामोशी से ध्रुपद की बातें सुनता रहा। ध्रुपद तिग्गा ने आगे कहा, ‘सृष्टि के निर्माण के समय भारत भूमि का यह पठारी प्रदेश हिस्सा सबसे पहले महासागर से बाहर आया था। अतः विष्णु के आरम्भिक अवतारों की कार्यस्थली यह पठारी प्रदेश और इसके आसपास के क्षेत्र ही है।”

“इसका अर्थ यह हुआ कि सनातन धर्म के विकास की सबसे प्राचीन स्थली यह पठार है; और यहाँ के निवासी ही हैं जिनके आदिम धार्मिक विश्वासों को बाद में वैदिक लोगों ने एक संरचना देकर नियमों में बाँधा।”, अर्जुन तिग्गा ने ध्रुपद तिग्गा की तरफ देखते हुए कहा।

अर्जुन को ध्रुपद तिग्गा की बातें दिलचस्प लगी रही थीं। लेकिन एक जिज्ञासा उसके मस्तिष्क कौंधी, और वह स्वयं को प्रश्न पूछने से रोक न सका-‘ दादा, मेरे पूर्वज कौन थे?’”

“तुम्हारा गोत्र क्या है?”, ध्रुपद दादा पूछा। अर्जुन ने उत्तर दिया- “तिग्गा!!

ध्रुपद दादा बोले- ‘तिग्गा’ मतलब ‘वानर’! और तुम्हारे पूर्वजों का मूल स्थान तो दंडकारण्य है।”

“दंडकारण्य?”, अर्जुन ने चौकते हुए सवाल किया।

ध्रुपद दादा ने उसकी तरफ देखते हुए कहा, “हाँ वही दंडकारण्य! विध्यांचल से लेकर गोदावरी तक फैला हुआ पवित्र वनक्षेत्र जहाँ हनुमानजी, सुग्रीव, बाली, जामवंत और अंगद का जन्म हुआ था और वनवास के समय श्रीरामचन्द्र ने लगभग दस वर्ष बिताये थे।”

अर्जुन ने चौकते हुए प्रश्न किया “आप कहना चाहते हैं कि हमारे पूर्वज हनुमानजी हैं। मतलब हम हनुमानजी के वंशज हैं।”

ध्रुपद दादा सिर हिलाते हुए बोले, “हनुमान तो बालब्रह्मचारी थे। लेकिन, तुम सभी उन्ही के पूर्वजों के संतान हो।”

“मतलब...। मेरे पूर्वज वानर थे और उनके मानव!”- अर्जुन हंसा।

ध्रुपद दादा परिहास की मुद्रा में बोले- “पूर्वज तो सभी के वानर ही थे, तुम्हारे भी और उनके भी। वानर ही क्यों, मत्स्य, कुर्म, वाराह, चील, चींटी, कबूतर ये सभी हमारे पूर्वज हैं।”

अर्जुन ने पूछा, “लेकिन, दादा आज के आधुनिक युग में गोत्र का क्या काम?”

“तुम्हारा गोत्र तुम्हारे तुम्हारे आदिम पूर्वजों से जोड़ता है।”, ध्रुपद तिग्गा बोले, “अगर किसी आदिवासी या हिन्दू ने धर्मांतरण कर लिया हो फिर भी उसका गोत्र नहीं बदलेगा। देर-सबेर जब उसकी वापसी होगी तो यही गोत्र उसे फिर से उसके पूर्वजों से जोड़कर उनकी पुरानी पहचान वापस दिलवाएगा।”

“आपके कहा कि मेरे गोत्र के सर्वोच्च आदिपुरुष स्वयं हनुमानजी हैं। लेकिन, मेरे पूर्वज हनुमान थे तो फिर मेरी पूछ कहां है? मेरे हनु कहां है? और मेरे शरीर पर वानरों जैसे बाल क्यों नहीं है?”, अर्जुन ने परिहास किया।

“हनुमानजी के वंशज नहीं हो तो फिर इन जंगलों में बंदरों की तरह कूदते बांधते क्यों फिरते हो? ध्रुपद तिग्गा भी परिहास की मुद्रा में बोले, “मैं तुम्हें एक सूत्र देता हूं। तुम अयोध्या जाओ, तुम्हें वहां हनुमानजी मिलेंगे। उनसे मिलने के बाद स्वयं से ये सवाल करना तुम्हें उत्तर मिल जायेगा।”

अर्जुन परिहास करता हुआ बोला, “हनुमानजी इस धरती पर आज भी मौजूद हैं। क्या विशेष रूप से मुझसे मिलने के लिए मौजूद हैं?”

ध्रुपद दादा हँसे, “पुत्र, हनुमानजी चिरंजीवी हैं। राम काज खातिर वे इस पृथ्वी पर आज भी मौजूद हैं। क्या पता वह हमारे बीच

ही कहीं बैठकर हमारी बातें सुन रहे हो और अपने ही वंश के एक बालक की बचकानी बातों पर मुस्कुरा रहे हो।”

शायद यह इस पेड़ के तने में भोजन तलाशती चींटियों में एक चींटी हनुमानजी भी हों। क्या पता? अर्जुन परिहास करता हुआ बोला।

ध्रुपद दादा गंभीर मुद्रा में बोले, “हो भी सकता है! वह किसी न किसी रूप में हर जगह मौजूद हैं। लेकिन तुम उन्हें तब तक महसूस नहीं कर सकते, जब तक तुम्हारा हृदय पवित्र ना हो जाए।” वे आगे बोले- “इस धरतीपर ससंकित हृदय वाले लोगों की बहुतायत है। उस दिन जब तुमने पवित्र शिवालय के भीतर प्रवेश किया था, तब क्या तुम्हें महसूस नहीं हुआ कि तुम्हारे अंतर्मन में कुछ अच्छा घट रहा है? क्या तुम्हारे हृदय में कोई संगीत नहीं बजा था? अगर तुम चमत्कार देखना चाहते हो तो अभी अपनी आंखें बंद कर हनुमानजी का ध्यान करो, चमत्कार होगा और वह तुम्हारे जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार होगा। इस वन के तमाम वृक्ष और पशु-पक्षी इस चमत्कार के साक्षी होंगे।”

ध्रुपद दादा की बातें सुनकर अर्जुन का नास्तिक मन पल भर के लिए डोल गया। उसने सोचा, परीक्षण करके देखते हैं।

उसने आंखें बंद कर हनुमानजी का आह्वान किया। ध्रुपद दादा ने उसके सिर पर स्नेह से हाथ फेरा। धीरे-धीरे उसे लगने लगा मानो इस बियावान जंगल में संगीत बज रहा हो। और जंगल के तमाम हिंसक जीव-जन्तु उसके इर्दगिर्द आकर चुपचाप बैठ गए हों। उसे लगा मानो वह अनंत ब्रह्मांड में विचरण कर रहा हो। यह एक अद्भुत अनुभूति थी।

न जाने वह कितनी देर सम्मोहन की इसी अवस्था में पड़ा रहा। अचानक उसकी तन्द्रा तब टूटी, जब उसे लगा जैसे पेड़ों के बीच कोई सरसराहट हुई हो। उसने चौक कर अपनी आंखें खोली। उसने महसूस किया मानो सामने झाड़ियां में कुछ हिला हो, वह भाग कर वहां गया। झाड़ियों के बीच से दो भूरी आंखें उसे देख रही थीं।

फिर वे अचानक ओझल हो गईं। कोई जानवर रहा होगा, सोचकर वह वापस पेड़ के पास लौटा।

ध्रुपद दादा वहां मौजूद नहीं थे। वह उसी स्थान पर बैठ कर ध्रुपद तिग्गा का इन्तजार करता रहा। घंटों बीत गए लेकिन ध्रुपद तिग्गा नहीं लौटे। हार कर उसने वापस शिव मंदिर लौटने का निर्णय किया। इसके बाद वह तेजी से वापस मंदिर लौटा।

वह तेजी से मंदिर के गेट के अन्दर आया। ध्रुपद तिग्गा के कमरे की तरफ बढ़ा। कक्ष दरवाजा खुला हुआ था, लेकिन अन्दर के हालात सामान्य नहीं थे, वहां मंदिर के लोग गमगीन खड़े रो रहे थे।

उसने वहां मौजूद एक पुजारी से पूछा, “क्या हुआ, किसका निधन हुआ है?”

“ध्रुपद दादा नहीं रहे।”, उसने दुखी स्वर में उत्तर दिया। उसने चौकते हुए पूछा, “ये कब हुआ?”

“आज ब्रह्म मुहूर्त में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए”, उत्तर मिला।

कोई बोला, ‘दो दिन पहले अपने पोते के अंतिम संस्कार में भाग लेने के लिए अपने गाँव गए थे। इनकी तबियत वही बिगड़ गयी। इन्होंने गाँव वालों से अनुरोध किया कि मुझे मंदिर ले चलो। गाँव के लोग उन्हें उसी रात मंदिर वापस लेकर आ गए। यहाँ आकर इन्होंने अन्न जल त्याग दिया था और कहा कि उनके जाने का वक्त हो हो चुका है..... और आज दो दिनों बाद ब्रह्ममुहूर्त में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।’

अर्जुन को लगा जैसे उसका सिर फट जायेगा, ‘अगर ध्रुपद तिग्गा अपने पोते दयाल के अंतिम संस्कार में गए थे तो जंगल में उनके साथ कौन था? क्या उसने सपना देखा था? हाँ, शायद उसने सपना ही देखा होगा!! नहीं, यह यकीनन सपना नहीं था। वे ध्रुपद तिग्गा ही थे जो उसे जंगल में सोता छोड़ कर वापस गुमला चले गए थे। लेकिन, एक सवाल अब भी उसे परेशान कर रहा था कि ध्रुपद दादा के चले जाने के बाद वह कौन था जो झाड़ियों के बीच मौजूद

था? और, वह कौन था जो पिछले दो दिनों से उस भयानक जंगल में उसकी सुरक्षा कर रहा था?’

काफी देर तक इसी उधेड़बुन में रहने के बाद थक कर उसने सोचना बंद कर दिया।

गोधूली की बेला थी। मंदिर के ठीक सामने स्वर्ण रेखा मंद-मंद बह रही थी। अर्जुन के सिर के ठीक पीछे दलमा की पहाड़ियों के पार सूरज ढल रहा था। ढलते सूरज की रश्मियाँ स्वर्ण रेखा के जल में स्वर्णिम किरणों बिखेर रही थी।

ध्रुपद तिग्गा के ब्रह्मलीन होने के बाद अब उसके लिए इस मंदिर में कुछ भी बचा नहीं था। वह अपने आगे की योजना पर विचारमग्न था

अचानक उसे याद आया कि ध्रुपद तिग्गा ने उसे अयोध्या जाने के लिए कहा था। उसने आँखें बंद कर हनुमानजी का आह्वान किया। उसे लगा मानो उसके मन में संगीत बज रहा हो। यह वह पल था जब उसने अयोध्या जाने का प्रण किया।

उसके हृदय में एक विचार कौंधा, “अयोध्या यानी साकेत जहाँ सूर्य के वंशज अनादी काल से शासन करते हैं, और इस प्रदेश के आदिवासी भी तो आदिम युग से सूर्य की ही उपासना करते हैं।”

उसने अपनी स्वर्णरेखा का जल अंजुरी में भरा और डूबते सूर्य को अर्घ्य अर्पित कर दिया। उसे लगा मानो उसने स्वयं को अपने आदिम पूर्वजों की परम्पराओं से जोड़ लिया हो। ये उसके जीवन के सबसे असीम शांति के पल थे।

ये उसके जीवन के वे पल थे जब उसे चीजें स्पष्ट दिखने लगीं थीं। यह उसके आत्म-ज्ञान के वे पल थे जिसने उसके अंतर्मन से सनातन और आदिवासी जीवन पद्धति के सभी विरोधाभासों को समाप्त कर उन्हें एकाकार कर दिया।

उसके मन के अन्दर उठ रहे हर संदेह और विरोधाभास को उसकी स्वयं की अंतर्दृष्टि समाप्त कर रही थी। ‘सिंगबोंगा की पूजा तो सूर्यदेवता के रूप में संथाल सहित झारखण्ड के अधिकांश

आदिवासी करते हैं और यही प्रथा तो ऋग्वैदिक काल से हिंदू धर्म में भी व्याप्त है।' लेकिन इतनी समानता कैसे? शायद इसलिए क्योंकि भारतीय प्रायद्वीप का यह पठारी हिस्सा सबसे पहले समुद्र से बाहर आया. यहीं पर मानव जीवन का सबसे पहले आरम्भ हुआ होगा और आदि मानवों ने सबसे पहले 'सूर्य' और 'प्रकृति' को ईश्वर मानकर उनकी पूजा शुरू की होगी और फिर यह विश्वास धीरे-धीरे भारत के अन्य हिस्सों में फैला होगा और उसे वैदिक ब्राह्मणों ने इन्हीं धार्मिक विश्वासों को वैदिक ऋचाओं में ढाल कर, वैदिक संस्कृति का विकास किया होगा.

उसके हृदय में एक प्रश्न उठा, 'हिन्दू तो बहुदेवतावादी हैं लेकिन क्या आदिवासी बहुदेववादी नहीं होते?, उत्तर उसके अंतर्मन ने ही दिया, 'उराँव अपने सर्वोच्च देवता को 'धर्मेश या भगवान' कहते हैं। संथाल उन्हें 'ठाकुर' कहते हैं। अगर गहराई से देखा जाय तो हिन्दू और आदिवासी दोनों ही एकेश्वरवादी होते हुए बहुदेवतावादी हैं। संथालों में देवताओं की कम से कम दस श्रेणियां हैं, जिनमें पैतृक आत्माओं से लेकर ग्राम देवताओं तक, इनमें प्रसिद्ध पौराणिक हिंदू देवता और पारंपरिक आदिवासी देवता दोनों शामिल हैं। संथाल सूर्य-देवता 'सिंगबोंगा' और पर्वत-देवता मारंग बुरु, सभी एक ही ईश्वर के अलग स्वरूप हैं। हिंदुओं ने हिंदू एकेश्वरवाद को अंतर्निहित एकता के उसी तर्क और अच्छे शास्त्रीय अधिकार के साथ साबित करने की कोशिश की है, अर्थात्, वैदिक श्लोक: 'बुद्धिमान व्यक्ति एक ही ईश्वर को कई नामों से पुकारते हैं।' दरअसल हर वह तर्क जो संथालों को एकेश्वरवादी बनाता है, हिंदुओं को भी एकेश्वरवादी बना देता है।'

उसके हृदय में प्रश्न उठा, 'हिन्दू तो मूर्तिपूजक है और हम आदिवासी प्रकृतिपूजक?' लेकिन अंतर्मन से पुनः ध्वनि प्रगट हुई, 'हिंदू और झारखण्ड के जनजातीय देवताओं के नाम और पौराणिक व्यक्तित्व कितने भी भिन्न क्यों न हों, दोनों धर्म समान रूप से मूर्तिपूजक हैं, भले ही ओरांव देवता, 'सूर्य-भगवान', किसी भी तरह से हिंदू धर्म के सूर्य पंथ से उधार नहीं लिए गए हैं, दोनों परंपराएं

सूर्य-पूजा का अभ्यास करती हैं, जिसे इब्राहीम धर्म प्रतिबंधित करते हैं। संधाल सूर्य को अपने सर्वोच्च देवता, सिंगबोंगा के रूप में पूजते हैं, लेकिन भले ही वे उनके एकमात्र देवता है, फिर भी उनकी पूजा साकार रूप में होती है। आज का हिंदू धर्म प्राचीन आदिवासी पुरातनता से जुड़े कई प्रथाओं को जारी रखता है। ईसाइयों और मुसलमानों के विपरीत हिंदुओं ने कभी भी आदिवासियों को हिंदू बनाने के लिए कोई प्रयास नहीं किया है। इसे दोनों के एक ही होने रूप में देखा जा सकता है।'

अर्जुन ने जब समानता के बिन्दु तलाशने शुरू किये तो दोनों ही एकाकार होते चले गए। आदिवासियों के देवता और पूर्वजों की आत्माएँ पहाड़ों, नदियों और पेड़ों में रहती हैं। बलि के स्थान जंगल में छिपे होते हैं। यदि आदिवासी खुली हवा में पूजा करते हैं, तो प्राचीन वैदिक सनातनी भी खुली हवा में पूजा करते थे। जहां तक पूर्वजों और प्रकृति और आत्माओं की पूजा की बात है तो यह निश्चित रूप से आदिवासियों पर गैर-मुस्लिम और गैर-ईसाई होने का प्रमाण है। झारखण्ड आदिवासी पेड़ों, पत्थरों और सांपों जैसी चीजों की पूजा करते हैं। लेकिन पूरे देश में तुलसी, बिल्व, अश्वत्थ सभी हिंदुओं के लिए पवित्र हैं। नाग, की पूजा देश भर में प्रचलित है। पशु देवताओं को प्रमुख हिंदू देवताओं के साथ निकटता से जोड़ा गया है। शिव और विष्णु दोनों की प्रतिमाओं में नाग और गरुड़ एक महत्वपूर्ण शक्तिशाली प्रतीक है। इस प्रकार तो सभी हिंदू 'एनिमिस्ट' हैं। पेड़, नदियाँ, पहाड़ तथा पशु-पक्षियों की हिंदू उनकी पूजा करते हैं या उनकी परिक्रमा करते हैं। वेदों में प्रातःकी देवी, इंझावात के देवता, आकाश-देवता, वायु-देवता और जल देवता हैं। यदि कोई आदिवासियों के बीच रहता है, तो उसे तुरंत अनुभव होगा कि वे पुराने वाले अच्छे हिंदू हैं।' वैदिक और पौराणिक हिंदू धर्म आदिवासी जीववाद के एक रूप में शुरू हुआ, और हिन्दुओं ने कभी भी इन जड़ों से अलग होने की कोशिश नहीं की।

रामायणकालीन वानरों की प्राचीन किष्किन्धा नगरी भी तो दंडकारण्य में ही थी. आंजनग्राम के उरांव जनजाति के लोग कुरुख

भाषा बोलते हैं। कुरुख की उत्पत्ति द्रविड़ मूल की है। दक्षिण भारत में कर्नाटक का हम्पी जिसे रामायणकालीन किष्किन्धा राज्य माना जाता है, वहां की भाषा भी द्रविड़ मूल की ही है. मतलब, झारखण्ड के आंजन ग्राम से कर्नाटक के हम्पी के बीच युगों-युगों से एक अदृश्य सम्बन्ध है।’

दिमागी तौर पर अब अर्जुन हिन्दू और आदिवासी के धार्मिक मतभेद से बाहर निकल चुका था। लेकिन, इन सबके बीच अपने आदि पूर्वज से मिलने की इच्छा बलवती हो गई। यह तलाश आंजन ग्राम के प्रथम आदिवासी की थी.

ईसवी सन, 2016
स्वर्णरेखा तट, आधुनिक झारखण्ड

जीवन की उठापटक से ऊबे अर्जुन के हृदय में संन्यास की भावना प्रबल होने लगी। वह अपने माता-पिता को खो चुका था, शिउली उसके जीवन से बहुत पहले ही बहुत दूर जा चुकी थी। ध्रुपद तिग्गा के कहेनुसार शिव ने उसे पुनर्जीवन दिया था। निरुदेश्य जीवन जीने से बेहतर था कि वह अपने जीवन को किसी ऐसे काम में लगाए जिससे उसे हृदय की शांति प्राप्त हो और जगत का कल्याण भी हो। ऐसा निश्चय कर वह सुबह की पहली किरण के साथ शिव मंदिर की सीढ़ियों से नीचे उतर स्वर्णरेखा रेखा के किनारे-किनारे किसी अनजान अनजन गंतव्य की तरफ बढ़ चला।

लगभग सात-आठ घंटे चलने के बाद वह स्वर्णरेखा नदी के उद्गम स्थल पांडु गांव पहुंचा। उद्गम स्थल पास में छोटे-छोटे शिवलिंग बिखरे पड़े थे। अर्जुन को इस गाँव में कुछ साधू मिल गए। एक साधू ने बताया कि स्वर्णरेखा कोई सामान्य नदी नहीं बल्कि एक पौराणिक नदी है। महाभारत काल में अज्ञातवास के दौरान पांडव इस गांव में आए थे। द्रौपदी की प्यास बुझाने के लिए अर्जुन ने बाण

मारकर इसी स्थल से शीतल जल निकाला था। युग बीत गए किन्तु यहाँ से पानी निकलना बंद नहीं हुआ।

अर्जुन अनायास ही वहाँ मौजूद उन साधुओं के जत्थे में शामिल हो गया और उनके साथ अनजान यात्रा पर निकल पड़ा। जत्थे में अधिकतर साधु खामोशी साथ चले जा रहे थे। मतवालों का अजीब सा जत्था था। जहाँ मन करता, वहाँ रुक जाते, थोड़ा विश्राम करते और फिर अपनी यात्रा पर निकल पड़ते। साधु बिल्कुल निर्लोभी थे। अगर किसी नगर में प्रवेश करते तो सात घरों से अधिक घरों से भिक्षा नहीं मांगते। दिन में सिर्फ एक बार भोजन करते और अपनी मंजिल की तरफ बढ़ते चले जाते। इन संन्यासियों का जत्था दुनियावी चिंताओं से दूर गाते-बजाते अपनी मंजिल की तरफ बढ़ रहा था और उनके साथ अर्जुन भी शिव- शिव करता हुआ साथ चला रहा था।

दो दिनों की यात्रा के पश्चात संन्यासियों का यह जत्था छोटानागपुर पठार के उत्तरी हिस्से में पहुँचकर एक छोटी से जलधारा के समीप रुक गया। सभी संन्यासियों ने स्नान के बाद छोटे से जल स्रोत की परिक्रमा की। यह सब देखकर अर्जुन तिग्गा के मन में जिज्ञासा जागी उसने अपने साथ परिक्रमा कर रहे एक साधू से डरते- डरते प्रश्न किया, “यह कौन सी जगह है? और यह कैसा जल स्रोत है?”

साधु उसकी तरफ देखे बगैर बोल, “तू तो इसी क्षेत्र का निवासी जान पड़ता है रे.....लेकिन तुझे इतना भी नहीं पता? यह जल स्रोत पवित्र निरंजना का उद्गम स्थल है।”

अर्जुन ने चौकते हुए पूछा, “ये कौन सी नयी नदी है, जो दिख भी नहीं रही।”

साधू आँखे तरेरता हुआ बोला, “दिखेगी कैसे? यह अंतः सलिला जो ठहरी! वह नदी जिसके जल का प्रवाह भीतर हो और बाहर से दिखाई न दे उसे अंतः सलिला कहते हैं। भारत वर्ष में दो नदियाँ अंतः सलिला हैं। सरस्वती और फल्गु !!!”

अनपढ़ भिक्षुक की तरह दिखने वाले साधू की भाषा और ज्ञान से प्रभावित हुए बिना वह रह न सका। उसने निर्णय किया कि इस जत्थे का साथ फिलहाल नहीं छोड़ना है।

न जाने क्यों उस साधू ने अचानक उसकी तरफ मुस्कुरा कर देखा। अर्जुन को अनुभव हुआ मानो साधू ने उसके मन का भाव पढ़ लिया हो।

लेकिन, अर्जुन के मन में सहज जिज्ञासा बनी हुई थी कि आखिर इन साधुओं का गंतव्य कहाँ है। लेकिन, उसको हिम्मत नहीं हो रही थी कि वह साथ चल रहे साधुओं से यह सवाल करे।

लेकिन, उसकी जिज्ञासा जल्दी ही शांत हो गई। साधुओं का जत्था एक छोटी सी नदी के किनारे-किनारे अपने गंतव्य की तरफ बढ़ रहा था। साथ चल रहे साधू ने उससे कहा कहा, “कल भोर होते-होते हम गया तीर्थ का दर्शन कर लेंगे।”

गया तीर्थ का नाम सुनते ही उसका ध्यान बरबस की अपने दिवंगत माता-पिता की तरफ गया। उसने निश्चय किया कि संन्यास धारण करने से पूर्व अपने माता पिता का पिंडदान कर पुत्र ऋण से मुक्त हो जाएगा।

साधुओं का जत्था बिना रुके निरंतर चलते हुए अगले दिन सुबह-सुबह गयातीर्थ पहुंचा। अर्जुन के पीछे झारखंड लोहित-हरित पठारी प्रदेश था और सामने मगध ऐतिहासिक क्षेत्र जहां युद्ध और बुद्ध का एक अद्भुत संयोजन था। यह वही मगध था जहाँ के एक राजकुमार ने अपने निन्यानवे भाइयों का वध कर उनके रक्त से अपना राज्याभिषेक करवाया था और इसी रक्तरंजित क्षेत्र में न जाने कहाँ से बुद्ध ने आकर शांति का संदेश दिया था।

परन्तु, उसकी उम्मीदों के इतर संन्यासियों का यह जत्था फल्गु नदी के तट पर रुका नहीं। विष्णुपद मंदिर को दूर से ही नमन कर वे किसी अन्य मंजिल की तरफ बढ़ गए।

अर्जुन उनके पीछे-पीछे चलता रहा। लगभग पांच मील चलने के बाद साधुओं का जत्था महाबोधि मंदिर के पास पहुंचा तब अर्जुन

को समझ में आया कि शायद इन साधुओं का गंतव्य महाबोधि मंदिर था ।

साधु अब दुगुने उत्साह के साथ तेज कदमों से आगे बढ़ चले । लेकिन महाबोधि मंदिर के मुख्य दरवाजे पर पहुंचने के ठीक पहले उन्होंने अपना रास्ता बदल लिया और किसी और दिशा में चल पड़े । अर्जुन की उलझन का ठिकाना न रहा । एक पल के लिए उसके मन में आया कि अजब सनकी लोग हैं । कहीं रुकते नहीं । न जाने कहाँ जा रहे हैं । लेकिन, जल्दी ही उसकी जिज्ञासा शांत हो गई जब साधुओं का जत्था एक बहुत ही पुराने मठ के सामने जाकर रुका । मठ फाटक पर पहुंचकर उन्होंने बड़े जोरों का जयकारा लगाया ।

हर हर महादेव! गोसाईं घमंडी महाराज गिरी जी की जय हो!!!!

अर्जुन के दिमाग में अब एक नया सवाल कौंधा, “अब इस गयातीर्थ में नए भगवान कहां से आ गए । पहले तो सिर्फ भगवान् बुद्ध और भगवान् विष्णु ही थे । अब ये गोसाईं घमंडी महाराज कहाँ से अवतरित हो गए ।”

अर्जुन जब साधुओं के जत्थे के के साथ फाटक से अन्दर घुसा तो पाया कि सामने बहुत ही प्राचीन मठ था, जिसकी दीवारें हजारों साल पुरानी लगती थी । दीवारों में बहुत ही प्राचीन मूर्तियां जड़ी गई थी । अन्दर काफी भीड़ थी जिनमें साधु संत, पर्यटकों और आम भक्तों की भीड़ शामिल थी । भीड़ को नजरंदाज करता साधुओं का जत्था आगे बढ़कर एक बड़े से हाल के अन्दर प्रवेश कर गया । उन्होंने अपने झोले, कमंडल और दूसरी चीजें दीवारों में बनी छोटी छोटी आलमारियों में रख दी और जमीन पर लेट आराम करने लगे ।

लेकिन, अर्जुन के अन्दर जिज्ञासा कुलांचे मार रही थी । महाबोधि मंदिर से सटे इस रहस्यमय मठ के बारे में जानने की जिज्ञासा ने उस लेटने नहीं दिया । वह चुपचाप अपनी जगह से उठा और अतिथि गृह से बाहर निकल गया । पत्थर की एक पुरानी दीवार पर लिखे अभिलेख से उसे पता चला कि यह मठ गिरि परंपरा से और

चार शंकराचार्य मठों में एक जोशी मठ से जुड़ा है। यह मठ अथर्ववेद को अपना वेद मानता है।

यह मठ कम प्राचीन वस्तुओं का संग्रहालय ज्यादा लग रहा था। कई स्थानों पर गौतम बुद्ध की बहुत प्राचीन टूटी-फूटी मूर्तियां संरक्षित करके रखी गई थीं। कुछ स्थानों पर प्राचीन प्रस्तर अभिलेख रखे हुए थे। मठ के कई स्तंभ तो बौद्ध कलात्मकता और वास्तुशास्त्र के बेजोड़ नमूने थे।

दिलचस्प बात यह थी कि मठ के अन्दर बने मंदिरों में हिंदू देवी-देवताओं की कई मूर्तियां रखी हुई थी। यह सारा वातावरण बहुत ही विचित्र था, क्योंकि बौद्ध और हिंदू धर्म से जुड़ी इतनी मूर्तियों का एक ही स्थान पर मिलना आश्चर्य की बात थी।

लेकिन, उसके मन में एक चीज अचानक कौंधी थी वह थी अपने पिता और माता का गय तीर्थ में श्राद्ध करना। इसलिए मठ के बारे में ज्यादा जानकारी जुटाने के बजाय वह चुपचाप वहां से फल्गु नदी की दिशा में गया।

उसने अपने कदम तेजी से फल्गु नदी की तरफ बढ़ाये जहां उसने हजारों की भीड़ को अपने पूर्वजों का पिंडदान करते हुए देखा था। लगभग आधे घंटे बाद फल्गु नदी के निकट पहुंचकर उसने देखा अभी भी घाट पर सैकड़ों लोग अपने पूर्वजों को पिंडदान दे रहे हैं।

वह वही फल्गु नदी के तट पर रेत पर बैठ गया। तभी किसी यजमान को तलाशता एक ब्राह्मण उसके पास आया और बोला-“का हो पिंडदान करना है क्या?”

उसने हाँ की मुद्रा में अपना सिर हिलाया। अर्जुन ने एक गहरी नज़र उस ब्राह्मण पर डाली। अधेड़ उम्र, पुराना कुरता और पुरानी धोती। गर्दन से लिपटा एक गमछा, कंधे पर लटकता एक पुराना लाल झोला और आँखों से झांकती दरिद्रता।

“भाई तुम्हारे पास कोई झोला-झकड़ा भी नहीं दीखता। दान दक्षिणा कैसे दोगे?”

अर्जुन गंभीर स्वर में बोला- “आप पिंडदान कराइए। जो भी उचित दक्षिण होगी मैं दे दूंगा।”

ब्राह्मण भी खाली बैठा था। दूसरा कोई यजमान आस-पास दिख भी नहीं रहा था इसलिए उसने अर्जुन की बात पर न चाहते हुए भी विश्वास कर लिया।

उसने अपने झोले से पिंडदान की सामग्री निकाली और चेतावनी भरे शब्दों में बोला-“पिंडदान की सामग्री मूल्य भी दक्षिणा के साथ जोड़कर दे देना। अगर नहीं दोगे तो पिंडदान का फल तुम्हारे पूर्वजों तक नहीं पहुंचेगा।”

अर्जुन उसे आश्चस्त करता हुआ बोला- “पंडितजी आप आरम्भ कीजिये, आपको संतुष्ट कर के ही मैं यहाँ से जाऊंगा।” इसके बाद पंडित ने संकल्प कराने के लिए मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया और बोला, “अपने माता पिता का नाम और गोत्र बताओ।” अर्जुन ने अपने पिता का नाम बताया और अपना गोत्र ‘तिग्गा’ जैसे ही कहा, ब्राह्मण गुस्से से भड़क कर बोला ई ‘तिग्गा टिड्डु’ कौन सा गोत्र होता है जी? गोत्र किसी ऋषि के नाम पर होता है।

अर्जुन को पहली बार अपने आदिवासी होने का भान हुआ। वह आंखें नम हो गईं। वह अपनी आँखें नीची करके बोला – “मेरे पिता ने मुझे मेरा यही गोत्र बताया था। ब्राह्मण उठते हुए बोला ई सब गोत्र का यहां पिंडदान नहीं होता है। यहां सिर्फ हिंदुओं का पिंडदान होता है।”

लेकिन, अर्जुन भी अपने माता-पिता को पिंडदान करने पर अड़ गया। बोला, “हमसे पुराना सनातनी इस धरती पर कोई नहीं!। तुम प्रवासी सनातनी हो, हम आदिवासी सनातनी हैं !!, दोनों के बीच में अभी बकझक चल ही रही थी कि तभी एक अनजान साधू उनके सम्मुख आकर खड़ा हो गया।

चौड़ी छाती, बलिष्ठ भुजाएं और चेहरे पर अद्भुत तेज, सिर पर बड़ी बड़ी जटायें, रक्ताभ चेहरे पर सफ़ेद दाढ़ी और इन सबके बीच झांकती बड़ी-बड़ी दो भूरी आँखें!

साधू को अपने पास खड़ा देख अर्जुन को न जाने क्यों बड़ी हिम्मत मिली। वह उस साधू को प्रणाम करते हुए हुए दुखी स्वर में बोला- “महाराजजी, यह ब्राह्मण मेरे स्वर्गवासी माता-पिता का पिंडदान नहीं करवा रहा है। कहता है हम सनातनी नहीं आदिवासी हैं।”

उसकी बातें सुनकर संन्यासी के चेहरे पर एक सहज मुस्कराहट खेल गई। उसने अर्जुन की तरफ देखते हुए पूछा- “कौन सा गोत्र है तुम्हारा?”

‘तिग्गा’- अर्जुन के शब्द आत्मविश्वास से लबरेज थे।

ओह, तो तुमलोग आंजन ग्राम के मूल निवासी हो।

इसके बाद साधू सहज भाव से ब्राह्मण की तरफ मुखातिब हुआ और बोला, ‘ब्राह्मण देवता, तिग्गा मतलब ‘वानर’ इस युवक ने पूर्वज हनुमंत के वंश के हैं। झारखण्ड का आंजन ग्राम तो हनुमान की जन्मस्थली है। ये वहां से आये हैं। अंजन ग्राम का समस्त क्षेत्र त्रेतायुग के दंडकारण्य का वह हिस्सा है, जिसका कण-कण भगवान् श्री राम, माता सीता और लक्ष्मण और हनुमान की बाल लीलाओं का साक्षी है..... और ब्राह्मणश्रेष्ठ आप इन्हें कह रहे हैं कि ये सनातनी नहीं!”

ब्राह्मण ने शास्त्र ज्ञान के आधार पर प्रतिकार किया- “लेकिन साधु महाराज, “वंशज तो ऋषियों के ही होते हैं!” संन्यासी हंसते हुए बोला- “पंडितजी, आपने विष्णुपद मंदिर की सीढियों पर जीवन बिता दिया, लेकिन ब्राह्मण श्रेष्ठ इतना भी नहीं जानते कि भगवान श्री विष्णु के प्रारंभ के चार अवतार मत्स्य, कूर्म(कच्छप), वराह, नरसिंह किसके थे? विष्णु भगवान का बाह्यदय अवतार तो पांचवा था। हमारे आदिवासी समाज के लोग विष्णु के इन्हीं महान अवतारों के वंशज हैं।”

‘इनके पूर्वज वानर, वाराह, कूर्म और मत्स्य होंगे, हमारे तो ऋषि थे।’, ब्राह्मण तमक कर बोला।

“पूर्वज तो सभी के वानर ही थे। तुम्हारे भी और तुम्हारे ऋषियों के भी। जीवन तो पहले जल में आया, जब भगवान ने मीन

का अवतार लिया, फिर कच्छप के रूप में उन्होंने जल और स्थल पर जीवन व्यतीत वाले जीवन का अवतार लिया, फिर वराह अवतार , नरसिंह अवतार और तब वाहदय के रूप में मानव अवतार । यह तो सृष्टि के निर्माण का क्रम है । यह तो सृष्टि के विकास के चरण हैं । सबके पूर्वज वानर ही नहीं वराह मीन वाराह भी रहे हैं । आदिवासी हमारे सनातन समाज के सबसे प्राचीन अंग है ये ऋषियों की संतानें नहीं बल्कि स्वयं देवताओं की संतानें है ।”

साधू थोड़ी देर के लिए साँस लेने के लिए रुका फिर बोला, “इन युवक के पूर्वजों का पिंडदान करो ब्राह्मण । इस बार साधू की आवाज में एक विचित्र प्रकार की गुराहट थी ।” उस गुराहट का प्रभाव इतना अद्भुत था कि उस ब्राह्मण ने यंत्रवत पिंडदान का कर्मकांड आरम्भ कर दिया ।

अर्जुन ने यही बातें उस दिन जंगल में ध्रुपद तिग्गा के मुख से भी सुनी थी । अब किसी संदेह की गुंजाइश नहीं बची थी..... तो वह स्वप्न नहीं था ।

अर्जुन ने कृतज्ञ भाव से उस साधू की तरफ देखा । लेकिन वह अनजान साधू उनसे विपरीत दिशा में तेजी के साथ विष्णुपद मंदिर की तरफ चला जा रहा था.

अर्जुन ने हृदय ही हृदय उस अनजान साधु को नहदय कर अपने माता-पिता का पिंडदान कार्य आरम्भ किया ।

पिंडदान संपन्न होने के उपरांत, ब्राह्मण ने निराशा भरी दृष्टि से अर्जुन की तरफ देखा । उसे अर्जुन से किसी दक्षिणा की उम्मीद नहीं थी ।

किन्तु जैसे ही अर्जुन ने अपनी अनामिका से सोने की अंगूठी निकालकर ब्राह्मण को सौंपी तो वह हतप्रभ रह गया । उसे आजतक किसी ने इतनी बड़ी दक्षिणा नहीं दी थी । उसे उसे अचानक ही साधू द्वारा कहे गए शब्द याद आ गए । वह एक झटके से उठा और अंगूठी

वापस उसे सौपता हुआ बोला- “जजमान, मुझे फल्लु की एक मुठ्ठी रेत दक्षिणा में दे दो। मुझे संतुष्टि हो जाएगी। जिस नदी की मुठ्ठी भर रेत से सम्राट दशरथ संतुष्ट हो सकते हैं तो मैं क्यों नहीं हो सकता।”

अर्जुन हतप्रभ हो उस दरिद्र ब्राह्मण की तरफ ताकता भर रह गया। जब काफी अनुनय विनय के बाद भी गयातीर्थ का वह गरीब ब्रह्मकल्पित ब्राह्मण अपने निर्णय से टस से मस न हुआ तो मजबूरन अर्जुन को अपनी अंगूठी वापस लेकर मठ लौटना पड़ा।

किन्तु उसके चले जाने के बाद भी वह ब्राह्मण उसी स्थान पर काफी देर तक बैठा रहा। उसके कानों में अभी भी साधू के शब्द गूँज रहे थे, ‘तिगा’ मतलब ‘वानर’ इस युवक के पूर्वज हनुमंत के वंश के हैं।’ फिर उसकी आँखों के सामने उस साधु की दिव्य प्रतिमा नाचने लगी। उसने पोथी पतरा से भरे अपने फटे हुए लाल झोले को उठाया और अपने घर की तरफ लौट पड़ा। आज उसे एक रूपये की भी आमदनी नहीं हुई, किन्तु उसकी चाल में एक अजब किस्म की संतुष्टि थी। आज उसके पास अपनी पत्नी और बच्चों को सुनाने के लिए एक अद्भुत कहानी थी।

अर्जुन जब वापस मठ लौटा तो उसने पाया कि मठ में श्रद्धालुओं की भीड़ बहुत कम हो चुकी थी तथा एक कोने पर लंगर चल रहा था। वह भी चुपचाप लंगर में भोजन करके लगा।

लंगर में उसके ठीक बगल में तीन युवक बैठे थे जो किसी भी रूप में भक्त या साधू तो बिल्कुल ही नहीं थे। वे संभवतः पर्यटक थे जो मुफ्त के भोजन की तलाश में लंगर में आकर बैठ गए थे। वे आपस में काफी हंसी मजाक कर रहे थे। उसमें से एक के हाथ में बहुत महंगा कैमरा था। जिससे वह लंगर में भोजन कर रहे साधुओं की तस्वीरें ले रहा था।

अर्जुन से रहा नहीं गया, उसने धीरे से पूछा- “यह तो डीएसएलआर कैमरा है। अभी कितनी कीमत है इसकी?” उसकी बातें सुनकर उसमें से एक युवक चौकने का अभिनय करते हुए बोला- “अरे बाप रे! इस साधु बाबा को तो सब पता है।

हां, यह डीएसएलआर कैमरा है और उसकी कीमत एक लाख रुपए है।”

“भई मैं साधू नहीं हूँ। मेरे पास Canon EOS 90D डिजिटल DSLR कैमरा है। उसकी कीमत भी लगभग इतनी ही थी।” अर्जुन हँसते हुए बोला।

भोजन के बाद अर्जुनने हाथ से इशारे से नाटे कद वाले गोल-मटोल युवक से कैमरा मांगा और अपने हाथों में कैमरा लेकर उसकी लेंस की सेटिंग ठीक करके एक प्रस्तर स्तम्भ की बहुत विशेषज्ञता पूर्वक तस्वीर ली और बोला- “इसका लेंस तो बेहतरीन है।”

युवक ने कैमरे में उसकी खिंची तस्वीर देखी तो उसकी किये बगैर नहीं रह सका-“ग़ज़ब! फोटोग्राफी का तो बहुत अनुभव है। कहाँ से हो भाई?”

“दिल्ली से हूँ, पुरातत्व विभाग में प्राचीन भाषाओं को पढ़ने की कोशिश करता हूँ।”, अर्जुन तिग्गा ने उत्तर दिया।

उनमें से एक युवक ने उसकी तरफ अपना हाथ बढ़ाया, “मैं जगत रत्नाकर ! फिर दूसरे युवक की तरफ इशारा करते उसका परिचय दिया, “ये हमारे गोल मटोल मित्र शाहीजी हैं। हम सभी प्रयागवासी हैं।”

“आपलोगों का इस मठ में आने का कोई विशेष प्रयोजन है क्या?, अर्जुन तिग्गा ने विनम्रता से प्रश्न किया।

द्विवेदी धीरे से बोला- “हम कोसल प्रदेश जहाँ भगवान् राम जन्मे थे उसके प्राचीन अस्तित्व के साक्ष्य खोज रहे हैं।”

“मैं कुछ समझा नहीं!”, अर्जुन तिग्गा के स्वर में उलझन थी।

रत्नाकर ने स्पष्ट किया, “हम यह प्रमाणित करने का प्रयास कर रहे हैं कि ईसा के जन्म से पूर्व भी कोसल नामक कोई प्रदेश था जो हिन्दू मार्वालम्बियोंके लिए श्रद्धा और आकर्षण का केंद्र था।”

“आपलोगों की खोज कहाँ तक पहुंची हैं?”, अर्जुन ने उनकी खोज में दिलचस्पी लेते हुए जिज्ञासा प्रगट की।

“अमृतसर के अति प्राचीन दुर्गियाना मंदिर में हमें एक 500 वर्ष प्राचीन पाण्डुलिपि के कुछ पन्ने मिले हैं। बुरी तरह क्षतिग्रस्त इस पाण्डुलिपि के कुछ पन्ने ही पढ़ने लायक हैं। इन पन्नों में हजारों साल पुरानी एक ऐसी रहस्यमय वस्तु का आधा अधुरा जिक्र है जिसका सम्बन्ध कोसल प्रदेश से है।”, रत्नाकर ने उत्तर दिया।

‘लेकिन उस प्राचीन पाण्डुलिपि में लिखा क्या था।’, अर्जुन की जिज्ञासा चरम पर थी।

हमें उसमें सिर्फ कुछ शब्द स्पष्ट रूप से लिखे मिले हैं जैसे कि ‘कोशल प्रदेश, विष्णुपद, शापित नदी और ‘फल्गु’, किन्तु हम इनमें कोई परस्पर सम्बन्ध जोड़ नहीं पा रहे हैं।”, रत्नाकर के शब्दों में निराशा के भाव थे।

लेकिन गयातीर्थ के इस दसनामी मठ का आपकी खोज से क्या सम्बन्ध?”, अर्जुन की दिलचस्पी बढ़ती जा रही थी।

“दुर्गियाना मंदिर से प्राप्त पाण्डुलिपि के अनुसार सैकड़ों साल पहले इस मठ के संस्थापक महंत घमंडी गिरी को अमृतसर में वह रहस्यमय वस्तु सौंपी गई थी, जिसमें ईसापूर्व के प्राचीन कोशल प्रदेश का एक हिन्दू धार्मिक स्थल के रूप में जिक्र था।

अर्जुन ने धीरे से अपना सिर हिलाया।

“पहले तो हमें लगा कि इसका अर्थ यह है कि प्राचीन कोसल प्रदेश से सम्बंधित कोई प्राचीन साक्ष्य विष्णुपद मंदिर के आसपास शापित नदी फल्गु के निकट किसी सुरक्षित स्थान पर रखा गया है। इसीलिए हम घमंडी गिरी के इस मठ में पहुंचें। अर्जुन खामोशी के साथ उसकी बातें सुन रहा था। कुछ पल सुस्ताने के बाद रत्नाकर आगे बोला, “फल्गु नदी एक शापित नदी है। इसके बारे में प्रसिद्ध है कि इस नदी को सीता जी ने श्राप दिया था। लेकिन, इस नदी का कोसल प्रदेश से क्या संबंध है, यह हमारी सोच से अबतक परे है। हम बड़ी की उम्मीद के साथ इस मठ में आए थे। हमें पक्का यकीन था कि हम यहाँ उस रहस्यमय साक्ष्य को प्राप्त

कर लेंगे। लेकिन, अभी हमारी खोज उसी स्थान पर अटकी हुई है जहाँ से हमने आरम्भ किया था।”

अर्जुन तिग्गा ने फिर सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

रत्नाकर ने कुछ सोचते हुए बोला, “यकीनन वह शापित नदी फल्गु नदी नहीं है क्योंकि फल्गु नदी के आस-पास हमें ऐसा कोई सुरक्षित स्थान नहीं मिला जहाँ उस रहस्यमय वस्तु को सुरक्षित जा सकता हो। गुरु घमंडी गिरी जब इस वस्तु को अमृतसर से लेकर आए होंगे, उस समय बौद्ध विहार की स्थिति बहुत जीर्ण शीर्ण हो चुकी होगी। इसलिए इस बौद्ध विहार या विष्णुपद मंदिर में उन चीजों को रखना कोई समझदारी नहीं होती।”

“क्या मैं उस पांडुलिपि के उस हिस्से का मुआयना कर सकता हूँ जिसमें उस वस्तु का जिक्र है?”, कुछ क्षणों की खामोशी के उपरांत अर्जुन ने रत्नाकर से पूछा।

“हां क्यों नहीं! उसकी एक तस्वीर मेरे फ़ोन में है, आप उसको इनलार्ज करके देख सकते हैं”, रत्नाकर ने सहमती दी। अर्जुन तिग्गा ने काफी देर तक पाण्डुलिपि के उस हिस्से का मुआयना किया। उसकी नज़र एक दोहे पर पड़ी।

**‘एक फल्गु बसत है, श्री विष्णुपद के भीर
दूजे फल्गू रहत हैं, शापित नदी के तीर।’**

उसे पढ़ने के बाद वह रत्नाकर को संबोधित करते हुए बोला- “रत्नाकर जी, इसमें तो सिर्फ एक दोहा लिखा है। और इसके नीचे घमंडी गिरी का नाम लिखा हुआ है। इसका मतलब यह है कि महंतजी ने यह दोहा उस प्राचीन साक्ष्य के वर्तमान स्थान के संकेत के रूप में लिखा है।” “मैंने भी यही दोहा पढ़ा था। लेकिन, इसका अर्थ बेहद जटिल है। यह दोहा हमें उलझा रहा है। फल्गु, विष्णुपद मंदिर, शापित नदी और घमंडी गिरी इन सभी का सम्बन्ध तो गया तीर्थ से ही है। इसमें कोशल का जिक्र भी नहीं है?” रत्नाकर निराशा

भरे स्वर मे बोला, “इसी दोहे के अर्थ को डिकोड करने के लिए ही मै पिछले दस दिनों से इस मठ की खाक छान रहा हूँ।”, रत्नाकर के शब्दों में घोर निराशा के भाव महसूस कर तिग्गा उन्हें सांत्वना देते हुए बोला- “आपको निराश नही होना चाहिए। धर्म का काम है। जहां आप चूकेंगे वहां हनुमानजी आपकी मदद के लिए आयेंगे।”

“अभी तक तो वो आये नहीं!”, रत्नाकर ने उलाहना दिया।

“रत्नाकरजी, इस कलयुग में हनुमंत अपने आराध्य श्रीराम का, हर कार्य अपने भक्तों के माध्यम से पूरा करवाते हैं। लेकिन, जहाँ हमारी क्षमता कम पड़ेगी, वे स्वयं प्रगट होंगे,.....किसी न किसी रूप में मदद के लिए जरूर आएँगे।”, अर्जुन तिग्गा की बातों अद्भुत दृढ़ता थी।

उस आस्थावान आदिवासी की बातें सुनकर रत्नाकर को लगा जैसे उसका खोया हुआ आत्मविश्वास पुनः लौटने लगा है। “मुझे लगता है अब शायद अगला रास्ता अयोध्या की तरफ ही जाता है, जहां उस रहस्यमय साक्ष्य से संबंधित कोई जानकारी हमें मिल सकता है”, रत्नाकर धीरे से बोला। फिर जाने क्या सोच कर बड़ी उम्मीद से उसने अर्जुन तिग्गा की तरफ देखा और विनीत स्वर में बोला, “तिग्गा साहब आप भी हमारे साथ अयोध्या चलिए। आपकी उपस्थिति ने मुझे पुनः उत्साह से भर दिया है। आपका प्राचीन भाषाओं का ज्ञान भी इस पवित्र कार्य में हमारे बहुत काम का हो सकता है।”

अर्जुन के लिए रत्नाकर का यह आमंत्रण अनूठा था। वह जिस अयोध्या तीर्थ में हनुमान जी से साक्षात्कार के लिए निकला था, वहां तक जाने का रास्ता खुद व खुद तैयार हो रहा था। उसने हृदय से हनुमानजी का स्मरण किया- ‘हनुमंत आप कहां-कहां किस-किस रूप में आते हो, और क्या क्या करवाते हों !! इसके बाद उत्साहित स्वर में बोला, “ये काम आपका व्यक्तिगत काम थोड़े ही है, यह तो रामजी की जन्मस्थली के खोज का काम है।”

अब अयोध्या के सहयात्री तीन नहीं, बल्कि चार थे।

ईसवी सन 2016 अयोध्या, आधुनिक उत्तरप्रदेश

अर्जुन तिग्गा के इस मित्र मंडली जुड़ने के बाद अब वे तीन नहीं बल्कि चार थे। शाही एक चुपचाप सा रहने वाला एक संशयवादी हिन्दू था, रत्नाकर तार्किक तरीके से अपनी बातें रखने वाला एक आस्तिक तथा तीसरा अशोक एक बेलौस और आक्रमक हिन्दूवादी था, जिसकी ईश्वर से भी ज्यादा हिन्दूवाद में आस्था थी। इन तीनों के साथ अर्जुन तिग्गा एक ऐसा व्यक्ति था जो अयोध्या में हनुमंत से सीधे साक्षात्कार के लिए व्याकुल था।

इन चारों का एक साथ होना सनातन की सदियों पुरानी परम्परा का एक जीता जागता उदाहरण था जहाँ आस्तिक, नास्तिक, संशयवादी, स्यादवादी तथा नितांत भौतिकतावादी, मूर्तिपूजक, प्रकृतिपूजक, सगुण-निर्गुण ब्रह्म के उपासक आदि आदि..... सनातन नामक विशाल वृक्ष की छाया में अपने तर्कों और विश्वास के साथ युगों-युगों से साथ साथ शांतिपूर्वक रहते आये थे।

यह सनातन ही है जहाँ स्वयं भगवान् के समक्ष उनका सबसे शिष्य अर्जुन नास्तिकता की बातें करता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम

को जाबाल नामक उन्ही का मंत्री उन्हें मर्यादित जीवन त्यागकर भौतिकतावादी दर्शन का पालन करने की सलाह देता है। बुद्ध कहते हैं, ईश्वर नहीं हैं, महावीर कहते हैं, 'निश्चित तौर पर नहीं कह सकते।' श्री कृष्ण कहते हैं, 'मै स्वयं ईश्वर हूँ'। और इन सभी की जन्मभूमि भारत है। यहाँ सभी के विचारों का स्वागत होता है।

राकेश शाही के लिए ये यात्रा दोस्तों के साथ सैर-सपाटा और मौज मस्ती का एक जरिया मात्र था। लेकिन यात्रा के दौरान वह अपने तेज दिमाग से अक्सर ऐसे जटिल सवाल खड़े कर देता था जिसका जवाब देने में रत्नाकर के पसीने छूट जाते। दूसरी तरफ अशोक बिना किसी तर्क के बड़े-बड़े वक्तव्यों के साथ विवाद का माहौल बना देता था। इसके बाद घंटों तर्क वितर्क चलते रहते।

गया तीर्थ से अयोध्या का रास्ता लम्बा था। उनकी गाड़ी ने जैसे ही गया तीर्थ की सीमा को पार किया, शाही ने चर्चा की शुरुआत कर दी। “क्या अशोक? दसनामी मठ की दीवारों को देखकर नहीं लगता था जैसे महाबोधि मंदिर की दीवारों को तोड़ कर उसके मलबे को इसमें लगाया गया हो।”

अशोक के भड़कने की बारी थी- “अबे शाही, हिन्दुओं को महाबोधि मंदिर की दीवारों को तोड़ने की क्या जरूरत थी? महाबोधि मंदिर को ही अपना मठ बना लेते। उस समय कौन से बौद्ध जिन्दा बचे थे जो विरोध करते?”

शाही मजा लेते हुए बोला- “इन मठ वालों ने महाबोधि मंदिर भले न तोड़ा हो लेकिन, दसनामी मठ के स्तम्भ तो वहीं से लाये गए लगते हैं।”

अशोक भड़क कर कोई बम पटकता, इसके पहले ही रत्नाकर ने मोर्चा संभाला- “भाई राकेश, दसनामी मठ के महंतों ने इस महाबोधि मंदिर की मूर्तियों और अवशेषों की सदियों से रक्षा की है। दसनामी मठ बहुत लंबे समय तक महाबोधि मंदिर का प्रबंध भी देखता रहा था। लेकिन 1946 में महाबोधि मंदिर का प्रबंधन नए लोगों के हाथों में दिया गया। इस मठ के महंत शाक्य मुनि बुद्ध

को विष्णु का दसवां अवतार मानते हैं, तथा उनकी इसी रूप में पूजा करते हैं। अतः वे किसी बौद्ध मंदिर को तोड़ने की हिम्मत नहीं कर सकते। आज भी बोध गया के बौद्ध मंदिरों में बौद्ध धर्म मानने वालों से ज्यादा हिन्दू श्रद्धालु मिलेंगे।”

अशोक थोड़ा गरम होते हुए बोला, “जो लोग बुद्ध को अपना भगवान मानते हैं, वे मंदिर तोड़ेंगे? ये शाहिया पगला गया है। यह समाज तोड़क आदमी है।”

शाही अशोक को चिढ़ाता हुआ बोला-“जो बुद्ध स्वयं भगवान् को नहीं मानते थे, उन्हीं को तुम लोगों ने भगवान् बना दिया! तुम्हारे तो चौरासी करोड़ देवता हैं। इनको तो छोड़ देते।”

रत्नाकर ने उसकी बात का उत्तर दिया, “हिन्दुओं में मान्यता है कि जब अधर्म बढ़ जाता है तो उसे खत्म करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए भगवान् पृथ्वी पर अवतार लेते हैं। उनकी मान्यता के अनुरूप बुद्ध ने अधर्म को खत्म किया था।

शाही ने हँसते हुए हुए उसकी बात का मजाक उड़ाया – “भाई, तुम्हारे विष्णु के अवतार बुद्ध भगवान ने अधर्म के खात्मे की जगह हिन्दू धर्म को ही उखाड़ कर उसके स्थान पर बौद्ध धर्म की स्थापना कर दी। इसका मतलब यही हुआ न कि बुद्ध के अनुसार हिन्दू धर्म ही अधर्म था?”

अर्जुन तिग्गा मजाक के रूप में चल रहे इस गंभीर तर्क-वितर्क को गंभीरतापूर्वक सुन रहा था।

“भाई, हमारी सनातन संस्कृति में धर्म का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय से नहीं है। इसका सम्बन्ध ‘नैतिकता’ और ‘जीवन मूल्यों’ से है। शांतिपर्व में धर्मराज युधिष्ठिर ने धर्म की क्या परिभाषा दी थी, याद है?”, रत्नाकर ने प्रश्न किया।

शाही ने उत्तर दिया, “मुझे तो कंठस्थ है लेकिन अशोक से भी पूछ लो- इसको तो पक्का याद नहीं होगा।”

अशोक भड़ककर बोला-“अबे शाही, क्या तुझे महामृत्युंजय मन्त्र कंठस्थ है? अगर है तो सुनाकर दिखा ?”

शाही बोला, “अब हम खाना पीना करके महामृत्युंजय मन्त्र का पाठ करें? कैसा पंडित है तुम ?

शाही की बातों को नजरअंदाज करते हुए रत्नाकर बोला- “शाही, मनु ने मानव धर्म के दस लक्षण बताये हैं:

**‘धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् ॥’**

इसका अर्थ यह है कि धैर्य, क्षमा, अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना, चोरी न करना, शौच (अन्तरंग और बाह्य शुचिता), इन्द्रियों को वश मे रखना, बुद्धिमत्ता का प्रयोग, अधिक से अधिक ज्ञान की ललक , सत्य और अक्रोध; ये दस मानव धर्म के लक्षण हैं।”

शाही अशोक की तरफ देखते हुए बोला-“अशोक के पास तो इस में से कोई भी गुण नहीं है। लेकिन खुद को बड़का हिन्दू बोलता है।”

अशोक का मुड़ खराब हो गया, बोला, “रत्नाकर भाई गाड़ी रुकवाओ, अब इस नास्तिक के साथ पीछे बैठना ही नहीं है। रत्नाकर तुम पीछे आओ, अब मैं आगे बैठूंगा।”

रत्नाकर शांत स्वर में बोला- “जब दिमाग में गुस्सा भरा हो तो हाईवे पर ड्राईवर के बगल में नहीं बैठना चाहिए। ड्राईवर को डिस्टर्बेंस होता है।” इसके बाद वह शाही की तरफ मुखातिब होकर बोला, “भाई, इसको क्यों भड़का रहे हो।”

अब अशोक बात बदलता हुआ बोला-“ दर्शन, काशी अभी कितनी दूर है?”

“100 किलोमीटर”, ड्राईवर दर्शन सिंह ने उत्तर दिया।

अर्जुन ने पहली बार प्रश्न किया, “रत्नाकर आप बता रहे थे कि हिंदू बुद्ध को विष्णु का दसवां अवतार क्यों मानते हैं।”

रत्नाकर गंभीरतापूर्वक बोला, “ दरअसल बुद्ध के समय एक बहुत बड़ा समूह उन संगठनों का था जो वेदों की सत्ता में विश्वास

नहीं करते थे। इनमें चार्वाक, माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक, और आर्हत प्रमुख थे। इनमें सबसे प्राचीन और प्रभावशाली चार्वाक दर्शन को मानने वाले थे। उनमें से कई नितांत भौतिकवादी थे। उनका यह मानना था कि स्वर्ग, नरक, पाप, पुण्य आदि का कोई अस्तित्व नहीं है। ये सुखवाद के समर्थक थे तथा लोगों को शिक्षा देते थे कि यह जीवन भोग के लिए है, इसलिए सुख ही इस जीवन का प्रधान लक्ष्य है। संसार में दुःख भी है, यह समझकर जो सुख नहीं भोगना चाहते, वे मूर्ख हैं। मछली में काँटे होते हैं तो क्या इससे कोई मछली ही न खाए? चौपाए खेत पर जायेंगे, इस डर से क्या कोई खेत ही न बोवे? चार्वाक के विचार लोगों में बहुत लोकप्रिय हो गए थे। लेकिन, अधिकतर लोग चार्वाक के विचारों को ठीक से समझ नहीं पाए, जिसके फलस्वरूप लोक से नैतिकता और जीवन मूल्यों का पतन हो गया था। मनुष्य जानवर बन गए थे। रिश्ते-नातों और सामाजिक मर्यादा के समस्त बंधन टूट रहे थे। वैदिक धर्म का प्रभाव सिर्फ द्विजों तक सीमित था। सनातन समाज का बड़ा हिस्सा घोर भौतिकतावादी और पतनशील हो चुका था। वैदिक धर्म के पुरोधा, गैर द्विज समुदाय से घृणा करते तथा उनसे दूर रहते थे। ऐसे में गौतम बुद्ध ने बौद्ध धर्म की स्थापना की। बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी था। किन्तु भौतिकवादी और सुखवादी नहीं था। बौद्ध धर्म अनीश्वरवादी होते हुए भी मनु के धर्म दर्शन के दस लक्षणों के बहुत करीब था। बौद्ध धर्म का जैसे-जैसे विस्तार होता गया, वैसे वैसे भारतीय समाज में नैतिकता, अहिंसा, दया और सहानुभूति जैसे महान मूल्यों का समावेश होता गया।”

“तब क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वैदिक धर्म गलत सिद्ध हो गया?”, शाही ने प्रश्न किया।

रत्नाकर ने उत्तर दिया-‘नहीं, ऐसा बिल्कुल नहीं था। वैदिक धर्म ने आरम्भ से ही समाज में एक न्यायशील एवं समदर्शी व्यवस्था का विकास करने की कोशिश की थी। ‘पाप और पुण्य’, ‘स्वर्ग और नरक’ आदि की जो अवधारणा थी, उन्हें स्थापित करने के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि लोगों के हृदय में अनैतिक और मिथ्या

आचरण के प्रति ईश्वर का भय बैठे, कि अगर वे पाप करेंगे तो इसकी सजा ईश्वर के द्वारा पूर्व निर्धारित है। अब उस काल में आज के जैसी कोई व्यापक और सुदृढ़ कानून और न्यायिक व्यवस्था तो थी नहीं कि सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में किसी व्यक्ति द्वारा किये गए किसी अपराध के लिए दंड का प्रावधान स्थापित हो। इसलिए वैदिक धर्म ने एक ऐसी व्यवस्था का विकास किया, जिसमें लोगों को यह विश्वास दिलाया गया कि अगर तुम पाप करोगे तो इसकी सजा तुम्हें ईश्वर देंगे। यह समाज में अपराध और अनैतिकता को रोकने का एक प्रयास था जो किसी बाहरी कानून या संहिता द्वारा नियंत्रित न होकर आत्म नियंत्रित था। तुम लोग इसे आत्मसंयम कह सकते हो।” मजे की बात यह है कि बुद्ध ने भी आत्मसंयम को ही मानव कल्याण का आधार माना तथा इसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की योगिक क्रियायें विकसित की।

तभी झाईवर ने एक झटके के साथ गाड़ी रोकी और बोला-
“भैया सारनाथ पहुँच गए। नीचे उतरिये, थोड़ा हाथ-पैर सीधा कर लीजिये।”

वे जब सारनाथ पहुँचे, सुबह के करीब दस बज रहे थे। इतनी देर से चुपचाप सबकी बातें सुन रहा अशोक अपना ज्ञान प्रदर्शित करते हुए बोला बोला, “अबे शाही, हमारे देश का राष्ट्रीय चिन्ह सारनाथ से ही प्राप्त हुआ था।” शाही ने पलटकर चुटकी ली, “तुमने बहुत बड़ी जानकारी दी है, इसके लिए तुम्हें पद्मश्री मिलना चाहिए।”

इसके बाद दोनों के बीच विवाद आगे बढ़ता, उसके पहले ही रत्नाकर ने मोर्चा संभाला। “चलो उतारो सभी! एक चक्कर सारनाथ का भी लगा लेते हैं, यह भी पुरातात्विक खजाने का भंडार ही है।” इसके बाद एक घंटे तक उन्होंने वहाँ मौजूद सभी स्तूपों तथा संग्रहालय का भ्रमण किया।

अब वे धम्मख स्तूप के पास विश्राम करते हुए लौटने की तैयारी कर रहे थे। पास में ही नव-बौद्धों का एक छोटा सा समूह वहाँ मौजूद लोगों के बीच छोटी-छोटी पर्चियां बांट रहा था। एक लड़का

उनके पास आया और एक-एक पर्ची सभी हाथों में भी थमा दी। अशोक ने नीले रंग की पर्ची को पढ़ना शुरू किया तो किसी संभावित खतरे को भांपते हुए रत्नाकर बोला- “अभई पढ़ लोगे? जेब में रख लो होटल पहुँचकर आराम से पढ़ लेना!”

लेकिन, होनी को कोई नहीं रोक नहीं सकता। वह चेहरा लाल करते हुए बोला- “भाई देख इसमें लिखा है-“ अयोध्या का राम लला मंदिर वास्तव में एक बौद्ध मठ था उसे हिंदुओं ने तोड़कर कर मंदिर बना दिया। हमें इसको फिर से हासिल करना है।” इसके बाद जिस युवक ने उसे पर्ची सौंपी थी, अशोक ने इशारे से उसे अपने पास बुलाया।

रत्नाकर धीरे से बोला, “लगता है, आज सारनाथ के शांति स्तूप के सामने ही महाभारत होगा।”

वह लड़का जैसे ही अशोक के निकट आया। अशोक धम्मरेख स्तूप की तरफ इशारा करते हुए उससे बोला, “अबे टकले इसे जो तू स्तूप, स्तूप बोल रहा है ना बे, यह असल में शिवलिंग है। हिंदू धर्म में शिवलिंग ऐसा ही होता है। यह दुनिया की एनर्जी का सोर्स है। अबे बकलोल, वहां जो तेरा बाप जापानी फोटो खिंच रहा है न, जाकर उससे पूछ एटॉमिक रिएक्टर का डिजाइन भी ऐसा ही होता है!”

वह युवक कुछ कहने के लिए उद्धत हुआ, लेकिन अशोक उसकी हाथ मरोड़ते हुए बोला-“साले अगर इस तरह का समाज तोड़क पर्ची दोबारा बांटते दिखा तो पटक-पटक कर मारूंगा।”

उसकी बात सुनकर युवक ने गुस्से से अशोक की तरफ देखा और किसी तरह अशोक से हाथ छुड़ा कर अपने ग्रुप की तरफ भागा।

रत्नाकर ने अशोक का हाथ पकड़ा और उसे लेकर तेजी से गेट की तरफ भागा। अर्जुन तिग्गा भी खतरे को भांप चुका था। वह चिल्लाया-“सब अलग-अलग भीड़ में घुस जाओ, अगर इन्होंने पकड़ लिया तो बहुत कूटेंगे।”

एक घंटे बाद किसी तरह बचते-बचाते वे चारो जब वाराणसी के एक होटल में पहुंचे तो रत्नाकर खिन्न भाव से बोला-
“अशोक, भाई तु त मरदे आज हमनी के स्वर्गरोहण करा देतs...!”

लेकिन अशोक का गुस्सा अभी तक उतरा नहीं था। वह गुस्से से बोला-“ये नव-बौद्ध जोम्बी बन गए है। जो लोग हिन्दू धर्म त्यागते हैं, वे जोम्बी बन जाते है। उनकी आत्मा मर चुकी होती है लेकिन उनका मस्तिष्क और शरीर कोई और नियंत्रित करता है। क्या कभी हिन्दुओं ने आदिवासियों, बौद्ध, जैन या सिख धर्मावलम्बियों को धर्मान्तरित होकर हिन्दू धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया? नहीं किया न? क्यों नहीं किया? कभी सोचा है? इसलिए क्योंकि हिन्दू उन्हें सनातन नामक विशाल वटवृक्ष की ही एक शाखा मानते हैं, पना अभिन्न हिस्सा मानते हैं।”

“तो फिर तुम कैसे कह सकते हो कि वह लड़का धर्मान्तरित था। किसी बौद्ध को कभी भी सनातन से अलग मत समझो”, रत्नाकर ने उसे समझाया। लेकिन, अशोक अपने धुन में चिल्लाये जा रहा था, “मुझे तो लगता है बुद्ध नाम का कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं था। वर्धमान महावीर ही बुद्ध हैं। रत्नाकर, तुमने सारनाथ संग्रहालय में चार भागों वाले अशोक स्तंभ को गौर से देखा था। तुम ही बताओ उसमें कौन सा चिन्ह बौद्ध चिन्ह था। सारे के सारे चिन्ह तो जैन धर्म से मिलते जुलते हैं।”

शाही ने कुछ कहने की कोशिश की। लेकिन, रत्नाकर ने उसे चुप रहने का इशारा किया।

अशोक अपनी झोंक में बोले जा रहा था-“हम हिन्दू लोग इनके बुद्ध को भगवान मानकर पूजा करते हैं और ये नये नए लौंडे हमारे देवताओं को गालियाँ देते हैं। हमारे 86 करोड़ देवता है। एक दो कम हो जायेंगे तो क्या होगा? भाई, हमको तो कभी-कभी एहसास होता है कि गौतम बुद्ध एक कल्पना है। बुद्ध के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक का कोई भी साक्ष्य हमारे पास उपलब्ध नहीं है। बुद्ध से सम्बंधित जो सबसे पुराने लिखित साक्ष्य है वे दीपवंश और महावंश नामक दो पुस्तकों में संकलित है। ये दोनों किताबें श्रीलंका

चौथी शताब्दी में लिखी गई। मतलब बुद्ध के जन्म के कमसे कम 600 वर्ष बाद लिखी गई इन किताबों में श्रीलंका के राजाओं का इतिहास दर्ज है। बुद्ध के जीवन से संबंधित जो भी सूचनाओं हमारे पास है वे तमाम सूचनायें कथित बुद्ध की मृत्यु के काम से कम 600 वर्ष साल बाद की है। तुम ही सोचो अगर इतनी सदियों बाद बुद्ध का जीवन, शिक्षा और चरित्र विवरण दिया गया होगा तो उसमें कितने मिथक होंगे, कितने झूठ होंगे, कितनी कल्पनाएं होंगी।”

“देखो अशोक, बुद्ध के बारे में जो आरम्भिक सूचनायें हमें मिली है वे बुद्ध की मृत्यु के 600 वर्ष नहीं बल्कि 200 वर्ष बाद के अशोक के रुम्मिनदेई अभिलेख से मिले हैं जो उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के समीप नेपाल में अवस्थित है। यह स्तम्भ अभिलेख प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में है। यह लेख अशोक के राज्यारोहण के बीस वर्ष बाद उत्कीर्ण कराया गया था। इस अभिलेख का मुख्य विषय अशोक द्वारा बुद्ध के जन्म स्थान 'लुम्बिनी' की यात्रा करना है”, रत्नाकर ने उसे समझाया।

शाही ने बहुत देर बाद अपनी चुप्पी तोड़ी- “हो सकता है गौतम बुद्ध कोई व्यक्ति न होकर कोई विचारधारा हो। हो सकता है उस कालखंड में नास्तिक विचारकों के उत्कृष्ट विचारों को एक जगह संकलित कर उसे बुद्धिस्म का नाम दे दिया गया हो। मतलब बुद्ध कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि बहुत सारे व्यक्ति है। मुझे तो लगता है, बुद्धिस्म अवैदिक समाज में चलाया जाने वाला एक सुधारवादी आन्दोलन था जो भौतिकवादी नास्तिकों में नैतिकता और जीवन मूल्यों का समावेश कर रहा था।”

“हो सकता है”, रत्नाकर ने उसकी बातों से अपनी सहमती जतायी।

“आज जिन्दगी में पहली बार शाही सही बोला है- “हम तो पहले से ही कह रहे हैं ये बुद्ध कोई व्यक्ति नहीं बल्कि कल्पना है। भाई गौतम बुद्ध का चेहरा तो देखो उनके सर के बाल का स्टाइल देखो उनकी नाक और उनकी भाव-भंगिमा देखो, क्या ऐसे लोग हमारे समाज में दिखते हैं? उनके घुंघराले बाल, उनकी तीखी नाक

उनके पतले होठ यह विशुद्ध रूप से किसी ग्रीक देवता की प्रतिकृति लगते हैं।” अशोक शाही का मजाक उड़ाता हुआ बोला।

“ऐसा नहीं है भाई, भारत में मूर्तियों का निर्माण बहुत बाद में शुरू हुआ था और बुद्ध के समय तो उनकी कोई मूर्ति बनी नहीं थी। यह तो बहुत बाद में बननी शुरू हुई। इसलिए इसपर यूनानी प्रभाव दीखता है”, रत्नाकर ने तर्क दिया।

“इससे तो सिद्ध नहीं होता कि बुद्ध नाम का कोई शख्सियत धरती पर पैदा हुआ था।”, अशोक ने रत्नाकर से कहा।

शाही गंभीरता के साथ बोला, ‘इससे क्या फर्क पड़ता है बुद्ध पैदा हुए या मिथक हैं?’, लेकिन उनके विचार तो हमारे सामने हैं न। बुद्ध के विचार बड़े महत्वपूर्ण हैं। उनको अगर हम अपने जीवन में उतारें तो हम अपने जीवन को, अपने समाज को बेहतर तो जरूर बना सकते हैं।”

शाही की इस बात से सभी ने अपनी सहमती जतायी।

तभी अशोक अपना पेट सहलाते हुए बोला- “भाई लोग अब होटल से बाहर निकला जाय वरना खाने को कुछ भी नहीं मिलेगा।”

ईसवी सन 2022
अयोध्या, उत्तरप्रदेश

कार में पांच लोग थे। वे चार और एक ड्राइवर। आगे वाली सीट पर रत्नाकर बैठा था। पीछे वाली सीट पर शाही, अशोक और अर्जुन तिग्गा बैठे थे। उनकी गाड़ी हनुमानगढ़ी का ठीक सामने दशरथ महलके पास रूकती है।

रत्नाकर ने गाड़ी के अंदर ही अपने जूते खोले और गाड़ी से नीचे उतरा। उसके साथ साथ पिछली गेट से शाही और अशोक उतरे।

अरे! अर्जुन तिग्गाजी किधर गए? रत्नाकर ने चौकते हुए पूछा।

अशोक बोला-“अर्जुन तिग्गाजी किसी दीवार के पीछे कुछ करने गए होंगे।”

“अबे चुप! कहीं भी कुछ भी बोलता रहता है”, शाही ने उसे घुड़का।

“उधर देखो!” उसी समय रत्नाकर ने आंखों से इशारा किया।

उनके ठीक सामने सामने अर्जुन तिग्गा बेसुध सा हनुमानगढ़ी की तरफ भागा जा रहा था। अशोक ने आश्चर्य से पूछा- “अरे, इनको क्या हुआ?”

रत्नाकर स्वयं आश्चर्य में डूबा हुआ था। उसने सर हिला कर कहा -“पता नहीं, ये ये पीछे की दूसरी वाली गेट से निकल गया था।” इसके बाद आश्चर्य में डूबे तीनों मित्र धीरे-धीरे हनुमानगढ़ी की तरफ बढ़े। हनुमानगढ़ी मंदिर के सामने पूजा के समान, लड्डू, माला तथा सिंदूर भारी मात्रा में बिक रहे थे। उन्होंने पूजा सामग्री खरीदी और मंदिर की तरफ बढ़े। शाही ने सुझाव दिया- “तिग्गाजी के लिए भी पूजा की सामग्री और प्रसाद खरीद लिया जाय।”

रत्नाकर ने सहमति की मुद्रा में अपना सिर हिलाया।

खरीदारी के उपरांत मंदिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए रत्नाकर ने शाही से पूछा-“भाई, तिग्गाजी का व्यवहार कुछ अजीब सा नहीं लग रहा था?”

शाही ने चिंतित मुद्रा में हामी भरी।

आज मंदिर में कम भीड़-भाड़ थी। वे तीनों धीरे-धीरे चालीस-पचास सीढ़ियाँ चढ़ते हुए हनुमानगढ़ी मंदिर के गर्भगृह के पास पहुँचे तो एक दूसरा आश्चर्य उनका इंतजार कर रहा था। मंदिर के गर्भगृह में तिग्गा हनुमानजी की मुख्य प्रतिमा के सामने स्थापित हनुमानजी की मूर्ति के आगे सिर रखकर फूट,फूट कर रोये जा रहे थे और साथ ही साथ हनुमानजी के चरणों को लगातार दबाते भी जा रहे थे।

इसकी तबियत ठीक नहीं लग रही।”, शाही ने रत्नाकर के कान में धीरे से कहा, “रत्नाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया लेकिन चिंता की लकीरें उसके चेहरे पर साफ़-साफ़ दिख रही थीं। उन्होंने हनुमान मंदिर के पुजारी को पूजा की सामग्री दी और वो पूजा करने लगे। रत्नाकर हाथ जोड़ अपनी आँखें बंद करके हनुमान चालीसा का पाठ करने लगा। पाठ खत्म करने के थोड़ी देर बाद जब रत्नाकर ने अपनी आँखें खोली तो पाया तिग्गा उनकी बगल में दोनों हाथ जोड़े खड़ा था। चेहरे में असीम शांति थी, ऐसा लग रहा था मानो उसने जीवन

की सबसे बड़ी चीज हासिल कर ली हो। थोड़ी देर बाद जब तिग्गा ने सामान्य भाव से रत्नाकर की तरफ देखा तो रत्नाकर की जान में जान आई। अशोक ने तिग्गा से पूछा, “क्या हुआ था? तबियत तो ठीक है न?”

तिग्गा बोला, “अशोकजी, जैसे ही मैंने हनुमानगढ़ी की तरफ देखा तो मुझे लगा जैसे मुझे कोई अदृश्य शक्ति मुझे मंदिर की ओर खींच रही हो। उसके बाद मैं दौड़ता हुआ आया और हनुमानजी के चरणों पर गिर पड़ा।”

“लेकिन, आप हनुमानजी के चरण क्यों दबा रहे थे?” , रत्नाकर ने प्रश्न किया। अर्जुन तिग्गा का उत्तर अद्भुत था, “हमारे गाँव के बुजुर्ग ध्रुपद तिग्गा ने कहा था कि हनुमानजी हमारे परिवार के सबसे बड़े बुजुर्ग हैं। सबसे बड़े पुरनिया है। मुझे लगा कि जब पर-पुरनिया के दर्शन हों तो उनका सिर्फ चरणस्पर्श किया जाता बल्कि मौका मिले तो उनका पांव भी दबाया भी जाता है।”

“.....लेकिन, पुजारी ने तुम्हें मंदिर के अन्दर जाने से क्यों नहीं रोका?”, अशोक ने आश्चर्य से पूछा।

शाही बोला, “यह तो पुजारी ही बताएँगे, चलो, उन्हीं से पूछ लेते हैं?”

उन्होंने अपना प्रश्न उनके सामने रखा। पुजारी उत्तर बहुत ही तर्कसंगत था-“जिनके कुलदेवता हनुमानजी होते हैं , उनमें से कुछ लोगों के साथ यहाँ ऐसी घटनाएँ कभी-कभी हो जाती हैं। जो लोग हनुमानजी के कुल से हैं, उन्हें महावीरजी से मिलने से रोकने का महापाप हम क्यों करें?” इसके बाद पुजारी हँसते हुए बोला-“हनुमानजी तो कलयुग के सबसे जागृत देवता हैं। क्या पता यही कहीं किसी रूप में खड़े हों और मेरी इस धृष्टता के लिए पटक-पटक कर मुझे पीटना आरम्भ कर दें।”

अयोध्या में रत्नाकर को उन धर्मरक्षकों की छावनियों की तलाश थी। जो यहाँ सदियों से रहते आये थे। उसे पक्का यकीन था कि घमंडी गिरी ने इन्हीं छावनियों में से किसी एक पास वह अवध से सम्बंधित वह बहुमूल्य साक्ष्य रखा होगा।

“हनुमानजी तो अयोध्या के रक्षक माने जाते हैं। उनका निवास स्थान हनुमानगढ़ी है। हो सकता है वह वस्तु हनुमानगढ़ी में ही कहीं सुरक्षित रखी गई हो।”, रत्नाकर ने विचार व्यक्त किया।

अशोक ने अपना दिमाग लगाया, “लेकिन भाई, हनुमानगढ़ी तो हमेशा मुस्लिम आक्रान्ताओं के निशाने पर रही है। यहाँ पर बार-बार हमले होते रहे हैं। कोई भी समझदार व्यक्ति यहाँ इतनी बेशकीमती वस्तु यहाँ नहीं रखेगा। यहाँ वह वस्तु सुरक्षित नहीं रह सकती है। वैसे भी अगर वह वस्तु हनुमानगढ़ी में होती तो अब तक प्रकाश में आ चुकी होती। यकीनन वह वस्तु किसी कम प्रसिद्ध जगह पर रखी गई होगी।”

रत्नाकर ने अशोक के तर्क से अपनी सहमती जतायी। शाही यहाँ भी नहीं चूका, बोला- “हनुमानजी के दर्शन होते ही इस मोटी अक्ल वाले का दिमाग खुल गया। अगर पहले यहाँ आ गया होता तो आज आईएएस अफसर होता। लेकिन अशोक भाई, एक बात बताओं- हनुमानजी के रहते अयोध्या की रक्षा हेतु इन धर्मरक्षकों की क्या जरूरत थी?”

“.....कलयुग में हनुमानजी स्वयं गदा नहीं उठाते, बल्कि में वे अपने भक्तों के माध्यम से रामकाज करवाते हैं।

“ये कौन बोला?”, शाही ने पीछे पलट कर देखा।

उत्तर देने वाला अर्जुन तिग्गा था। वह आगे बोला, “हमारे ध्रुपद दादा कहते थे। हमें ईश्वर ने बनाया है इसलिए, हम ईश्वर की जिम्मेदारी हैं। लेकिन, यह मंदिर ईश्वर ने नहीं बल्कि हमने बनाया है। ईश्वर ने यह कभी नहीं कहा कि तुम मेरा मंदिर बनाओ। इसलिए मंदिर की रक्षा हमारी जिम्मेदारी है।”

रत्नाकर शाही को इंगित करते हुए बोला, “अयोध्या नगरी में भ्रमण करते हुए तुम्हें अजीब-अजीब लोग मिलेंगे, जटा-जूटधारी

साधु ,संत, महात्मा, औघड़। उनके ललाट पर लगे तिलक वे भी अलग-अलग किस्म के। ये साधु हमें चौंका देंगे और पल भर मे हमारी हालत ऐसी हो जाएगी कि तुम्हारी इच्छा होगी कि अपने सारे सर्टिफिकेट और ज्ञान की किताबें सामने बह रही सरयू नदी में विसर्जित कर ललाट पर रामनाम का तिलक लगाकर सरयू तट पर धूनी रमाने लगे।”

“तिग्गाजी ने तो हनुमानजी के दर्शन तो कर लिया, लेकिन हमारी तलाश अभी अधूरी है”, रत्नाकर ने अपनी बात पूरी की।

हनुमानगढ़ी से निकालकर वे राम जन्मभूमि की तरफ बढ़े। इसी दौरान अर्जुन तिग्गा ने मंदिर हनुमानगढ़ी की सीढियों के पास की कच्ची जमीन से मुट्ठी भर धूल उठाकर अपने ललाट पर लपेट लिया।

शाही ने चौककर अर्जुन तिग्गा से पूछा- “अब यह क्या कर रहे हो भाई ?”

अर्जुन तिग्गा का उत्तर बड़ा दिलचस्प था, बोला , शाहीजी, मेरे पूर्वज पिछले हजारों सालों से इस मंदिर में हनुमानजी के दर्शन की खातिर आते होंगे, उनके पैरों की धूल यहीं कहीं बिखरी होगी। मैंने जब इस मंदिर के चौखट के पास की धूल को अपने माथे से लगाया तो मुझे ऐसा लगा जैसे मैं अपने सभी पूर्वजों के चरणों की धूल अपने माथे पर लगा रहा हूं।”

उसकी बातें सुनकर अशोक ने भी नीचे झुक कर मुट्ठी भर धूल उठा कर अपने ललाट पर लगा लिया। उसकी देखा देखी आस-पास खड़े कुछ ग्रामीणों ने भी भूमि पर से मुट्ठी भर धूल उठा-उठा कर अपने माथे पर लगाना शुरू कर दिया।

शाही धीरे से रत्नाकर के कान में बोला- “भाई, यह आदमी तो हिल गया है।”

रत्नाकर ने उत्तर दिया- “गलत!, मुझे ये तो यह बहुत ही बैलेंस व्यक्ति लग रहा है। यह ड्रामा या दिखावा नहीं कर रहा है। बस चीजों को अपने तरीके से देखने और समझने की कोशिश कर रहा है।”

शाही ने सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया ।

इसके बाद वे जैसे ही मंदिर की सीढ़िया से नीचे उतरकर आगे बढ़े एक बिंदी वाले साधू आकस्मात् रूप से सीधे उनके सामने आकर खड़े हो गए, और बिना किसी औपचारिकता के पूछा- “क्या भोजन ग्रहण हो गया? अशोक ने एक बार रत्नाकर की तरफ देखा और साधू से बोला- “कहाँ हुआ हैं महाराज, भूख ने मारे हालत बिगड़ा जा रहा है !”

बिंदी वाले बाबा वाले ने बड़ी आत्मीयता से अशोक का हाथ पकड़ा और कहा, “आइये, आपलोगों को हम श्री राम प्रसाद ग्रहण कराते हैं ।”, अशोक उनकी प्रतीक्षा किये बिना बिंदी वाले साधू के पीछे-पीछे चलने लगा ।

शाही ने एकबार स्वा जाने वाली नजरों से अशोक की तरफ देखा ।

रत्नाकर ने मुस्कराते हुए शाही का हाथ धीरे से दबाया और धीरे से बोला, ‘ घबराने की कोई बात नहीं है, हम कोई बच्चे थोड़े हैं कि किडनेप हो जायेंगे ।

चारों बिंदी वाले बाबा के पीछे-पीछे चल पड़े । लगभग दस मिनट पैदल चलने के बाद बाबा उन्हें एक पुराने से खंडहरनुमा आश्रम में ले गए । रत्नाकर ने अंदाजा लगाया, आश्रम कम से कम पांच सौ साल पुराना तो होगा ही ।

आश्रम के बाहर लगा चूने का रंग लगभग उड़ चुका था । दीवारों पर काली, भूरी और हरी काई की कई परतें बदरंग चूने के साथ मिलकर एक अजीबोगरीब परिदृश्य उत्पन्न कर रही थी ।

शाही ने धीरे से रत्नाकर के कान में कहा, “यह पैसा ठगने के लिए हमें बेवकूफ बना कर यहाँ लाया है ।” रत्नाकर ने धीरे से उत्तर दिया- “हमारे पास है ही क्या कि बाबा हमें लूट लेंगे?”

उत्तर में शाही कुछ नहीं बोला लेकिन, उसके चेहरे पर नाराज़गी साफ़-साफ़ दिख रही थी ।

बाबा उन्हें साथ लेकर आश्रम के भीतर एक बड़े से हॉल में पहुंचे। हॉल बेहद पुराना, लेकिन साफ-सुथरा था। वहां और भी कई लोग पंगत में बैठ कर भोजन कर रहे हैं।

बाबा बोले, “यहां पर मेनू का कोई सिस्टम नहीं है। जो बना है, वही प्रसाद के रूप में ग्रहण करना होता है।”

सभी ने सहमति की मुद्रा में सिर हिलाया। बाबा ने उन्हें एक पंगत में खाली जगह पर बैठने का इशारा किया। थोड़ी देर बाद पत्तल और मिट्टी के गिलास में पानी आ गया। आलू की रसदार सब्जी, आटे की पूरी और मूली की चटनी साथ में थोड़ा सा हलवा। रत्नाकर ने अशोक की तरफ देखा, अशोक जल्दी जल्दी पूरी सब्जी उदरस्थ कर रहा था। ऐसा लग रहा था मानो वह साल भर से भूखे हो। शाही ने धीरे से मज़ाक किया- “अबे, अशोक, थोड़ा धीरे-धीरे भोजन ग्रहण करो नहीं तो गले में अटक जायेगा।”

लेकिन अशोक को भोजन के अलावा कुछ और नहीं सूझ नहीं रहा था। तीनों भी सुबह से भूखे थे, वे भी अशोक की तरह की भोजन पर टूट पड़े।

भोजन ग्रहण करने बाद वे लोग उठे तो बिंदी वाले बाबा वापस आ गए, बोले- “आइये आपलोगों को माता जानकी और प्रभु श्री राम के दर्शन कराता हूं।”

चारो उनके पीछे-पीछे चल पड़े। वे उन्हें एक अंधेरे कमरे में ले गए जहां श्री राम जानकी की एक बहुत ही पुरानी सी मूर्ति स्थापित हुई थी। मूर्ति के ठीक सामने एक दीपक जल रहा था। चारो जने श्रीराम की मूर्ति के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। इसके बाद रत्नाकर ने अपनी जेब में हाथ डाला और मूर्ति के सामने रखे दानपेटी में कुछ रुपये डाल दिए।

बाबा मंद मंद मुस्कुराते हुए बोले, “इससे काम नहीं चलेगा। एक बोरा चावल का मूल्य दे दीजिए।” रत्नाकर ने बिना कुछ कहे श्रद्धा भाव से अपनी जेब में से 500 का तीन नोट निकाले और बाबा की हथेली पर रख दिया।

रत्नाकर की देखा-देखी शाही जी ने भी अपनी जेब में हाथ डाला तो बाबा मुस्कराते हुए बोले, “आप रहने दीजिए, आपका दान कोई और देगा। अशोक ने भी अपनी जेब में हाथ डाला तो बाबा ने उसकी तरफ देखते हुए कहा, “आप भी रहने दीजिए।”

अशोक ने पूछा, क्यों? भोजन तो मैंने भी ग्रहण किया है। बाबा हंसते हुए बोले- ‘आपलोगों से भोजन का मूल्य किसने लिया है? यहां तो दिनभर भंडारा चलता रहता है। आपके मित्र का पिछला बकाया था, इसलिए लिया गया है।’

रत्नाकर चौका, “बकाया!! मैं तो यहाँ पहली बार आया हूँ। बाबा ने उनकी आंखों में झाँकते हुए पूछा, “पहली बार आए हो?”, फिर वह ठहाका लगाकर रहस्यमय भाव से हंसने लगे। उन्हें इस प्रकार से हँसते देख, रत्नाकर के चेहरे पर अजीबोगरीब भाव उभरने लगे। शाही को लगा मानो कुछ गड़बड़ होने वाली है। उसने रत्नाकर का हाथ जोर से पकड़ा और उसे कमरे से बाहर की तरफ खींचते हुए भयभीत स्वर में बोला, “जल्दी भागो यहां से नहीं तो यह बाबा हम सभी की चट्टी खुलवा लेगा।”

अशोक और अर्जुन तिग्गा भी उन दोनों के पीछे-पीछे भागे। बाबा भी उनके पीछे दौड़ा और पीछे से शाही का हाथ पकड़ कर बोला- “दो मिनट रुको बेटा, डरो मत! मेरे पास तुम्हारा कुछ सामान है, लेते जाओ।”

शाही ने घबराकर कहा- “मुझे कुछ नहीं चाहिए, भोजन कर लिया, अब हाथ जोड़ता हूँ। मुझे जाने दीजिए!”

लेकिन, बाबा ने अपने झोले में हाथ डाला और एक छोटी सी डिब्बी जबरन उसके हाथों में थमा दी। इसके बाद वहां से वे चारों गिरते-पड़ते हुए वापस अपने होटल की तरफ भागे। पीछे से बाबा चिल्लाया, मेरी बात तो सुनो, कुछ बताना है।

लेकिन कोई भी रुकने को तैयार नहीं हुआ। थोड़ी देर बाद जब वे होटल पहुंचे तो सभी के हृदय में इन अजीबोगरीब घटनाओं का पूरा इंद्रजाल बना हुआ था। बाबा की दी हुई डिब्बी शाही की जेब में थी।

अचानक अशोक ने सवाल किया, “अपना ड्राइवर दर्शनवा किधर गया।” तब उन्हें याद आया कि वे लोग तो हनुमानगढ़ी अपनी गाड़ी से गए थे।

अशोक बोला- “भाई कुछ भी कहो, बाबा डेंजर लग रहा था, इन्हीं लोगों की वजह से साधु-संतों पर से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। बताओ, चार आदमी को खाना खिला कर पंद्रह सौ रुपये ठग लिया..... और मजा तो देखो, शाही ने चवन्नी खर्च नहीं किया फिर भी इसको बाबा ने कुछ दे दिया है।”

रत्नाकर कुछ नहीं बोला। थोड़ी देर बाद वह शाही से बोला, “खोल कर देखो तो साधु ने क्या दिया है।”

शाही ने धीरे से कहा-“प्रसाद या भभूत वगैरह होगा और क्या?”

“खोल करके देखो तो सही क्या है उसमें!”- रत्नाकर जोर देकर बोला।

शाही ने जेब में हाथ डाला। डिब्बी निकाल कर खोल कर देखा तो सन्नाटे में आ गया। डिब्बी में बहुत ही पुरानी हुई अंगूठी थी।

अशोक ने जल्दी से डिब्बी को हाथ में लिया और उसमें से अंगूठी निकाल कर हाथ में लेते हुए बोला, “जय राम जी की!! ये तो सोने की लगती है। भाई, तेरी तो लॉटरी निकल गई! बाबा ने तुझे फ्री में सोने का अंगूठी दी है।”

अर्जुन तिग्गा ने अशोक के हाथ से अंगूठी को लेकर उलट पलट कर देखना शुरू किया। “अंगूठी थोड़ी पुरानी लग रही थी। इसकी बनावट बहुत ही कूड किस्म की थी। किसी देहाती सुनार की बनाई हुई लगती है।”, उसने राय दी।

रत्नाकर अंदर का भी इतिहासकार जाग गया। रत्नाकर ने अर्जुन तिग्गा के हाथ से अंगूठी ली, और मुआयना करने के पश्चात संभाल कर वापस डिब्बी में रखते हुए बोला- “यह कुछ अलग तरह की अंगूठी लगती है। शायद कोई बहुत प्राचीन अंगूठी, हजार वर्ष पुरानी!”

शाही मंत्रमुग्ध भाव से बोला- “ये अयोध्या है, यहां जो हो जाए वह थोड़ा है।”

अशोक मुस्कुराते हुए बोला, “तिग्गा बाबू, आपको तो पूर्वजों के दर्शन गए, शाहीजी को प्राचीन अंगूठी मिल गई, और हमको क्या मिला? घंटा? वापस जाते समय गाड़ी का भाड़ा और पेट्रोल का दाम अब शाही ही देगा।”

अशोक की बात को नजरंदाज करता हुआ रत्नाकर बोला- “मैं सोच रहा हूं, क्यों ना बिंदी बाबा से एक बार और मिल ही लिया जाय। शाही ने सहमति की मुद्रा में सर हिलाया तो अशोक चहकते हुए बोला, “मैं भी चलूंगा। क्या पता बाबा हमको भी कुछ दे दे।” रत्नाकर उसे डराते हुए बोला, “भूल गए बाबा क्या बोला था? तुम्हारा बकाया है वहां पर। कहीं ऐसा ना हो कि लेने के देने पड़ जाए। अशोक सहमति की मुद्रा में सर हिलाया बोला.....ठीके बोले भाई!..... तब तो तुम तीनों ही जाओ, मैं कमरे में आराम करूंगा। वैसे भी मेरी तबियत थोड़ी गड़बड़ लग रही है।”

शाही उसकी तबियत की बात सुनकर चिंतित स्वर में बोला- “कल जिस तरह तुम भोजन ठूस रहे थे मुझे लग ही रहा था कि तुमको दिक्कत होगी।” अशोक कुछ भी नहीं बोला।

अगले दिन सुबह जब तीनों वापस राम मंदिर छावनी में गए तो सब कुछ वैसा ही था, जैसा कि पिछली शाम वे छोड़ कर आए थे।

अर्जुन तिग्गा ने वहां मौजूद एक साधु से पूछा, “एक बिंदी बाबा जो कल यहाँ मौजूद थे, वह कहां हैं?”

साधु ने प्रश्न किया, “कौन बिंदीवाले बाबा?”

“अरे वही जो कल हम लोगों को भोजन करा रहे थे?”

साधु को पहले तो कुछ समझ में नहीं आया, लेकिन शाही ने जब उसे बिंदी बाबा का पूरा हुलिया बताया तो वह पहचान गया।

“.....हाँ याद आया कल पहली बार ही आया था। मालिक की तरह बात कर रहा था। ऐसा लगता था जैसे वही इस आश्रम का महंत हो। आपको भोजन कराया और उसके बाद आपके जाते ही वापस चला गया”, साधु ने उत्तर दिया।

“लेकिन वह तो हमें आश्रम के अंदर एक मंदिर कक्ष में भी लेकर गया था।”, अशोक ने कहा।

“अच्छा!”, साधू चकित स्वर में बोला। हो सकता है वे पहले कभी यहाँ रहते हों और बाद में अपना डेरा बदल दिया होगा।

रत्नाकर ने पलट कर शाही की तरफ देखा, और मुस्कराते हुए बोला- “अयोध्या है, यहां कुछ भी हो जाए वह थोड़ा है।”

अचानक वहां मौजूद साधू के दिमाग में एक बात आयी- “आपने क्या कहा था बिंदी वाले बाबा?.....आप एक बार दशरथ महल के आस-पास भी देख लें। वहां बिंदी संप्रदाय के संन्यासी अपना डेरा लगाते हैं।”

जी! रत्नाकर ने उत्तर दिया।

बिंदी वाले बाबा से मिलने के लिए शाही सबसे अधिक व्यग्र था, बोला- “रत्नाकर भाई, आज ही दशरथ महल के आस-पास बिंदी वाले बाबा की तलाश करते हैं।” उसकी व्यग्रता देख रत्नाकर ने सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिला दिया।

थोड़ी देर बाद तीनों दशरथ महल पहुंचे। आसपास पूछताछ की तो पता चला बिंदी सम्प्रदाय का आश्रम पास में ही है। वे तेजी से आश्रम के अन्दर घुसे। सामने आश्रम का कार्यालय था। वे अन्दर प्रवेश कर गए। सामने एक वृद्ध सज्जन बैठे थे। बिना कुछ पूछे उन्होंने उत्तर दिया- “कमरे खाली हैं, लेकिन बिजली नहीं है।”

“अंकल हमें बिंदी वाले बाबा की तलाश है।”, शाही व्यग्र भाव से बोला।

सज्जन हँसे। “इस आश्रम में तो सभी बिंदी वाले बाबा ही हैं। हम सब माता सीता के सेवक हैं। आपको किससे मिलना है।” वृद्ध सज्जन ने आत्मीयता से प्रश्न किया।

रत्नाकर ने बिंदी वाले बाबा का हुलिया बताया।

‘देखिए, बिंदु आश्रम से बहुत सारे साधु संत जुड़े हैं जो देश के कोने-कोने से यहां आते हैं ऐसे में बिना नाम के किसी साधु महात्मा की पहचान करना बड़ा मुश्किल है”, वृद्ध सज्जन बोले।

“कल दोपहर के वक्त वे हमें हनुमानगढ़ी के द्वार पर मिले थे। इसके बाद वे हमें श्री राम छावनी आश्रम में लेकर गए थे और वहां हमें भोजन भी कराया था।”, शाही ने कहा।

‘अयोध्या में यह एक सामान्य सी बात है। यहां बहुत सारे आश्रमों और मंदिरों में प्रतिदिन लंगर चलते रहते हैं। ऐसे बहुत सारे साधु हैं जो भूखे श्रद्धालुओं को ले जाकर इन स्थानों भोजन कराते हैं। वैसे आपलोग उनसे किस मकसद से मिलना चाहते थे?’ वृद्ध सज्जन ने पूछा।

“कल उन्होंने एक अंगूठी दी थी और कहा था कि यह अंगूठी मेरे पूर्वजों की है शायद।”, शाही ने उतावलेपन के साथ उत्तर दिया।

वृद्ध सज्जन ने लाचारी के भाव के साथ अपना सिर हिलाया और बोले, “इस बारे में कुछ नहीं कह सकता।”

शाही के चेहरे पर उदासी की लकीरें साफ दिखने लगीं।

शाही के चेहरे पर उदासी के भाव भांपते हुए वृद्ध सज्जन ने एक सलाह दिया, “आप एक काम कर सकते हैं। यहां से तीसरी गली में स्वामी माधवानंद जी का आश्रम है। आप उनके पास जाइए और अपनी समस्या बताइए। वह निश्चित रूप से आपको संकेत में कोई ना कोई हल जरूर बता देंगे।”

‘ठीक है। हम लोग वहां जाते हैं।’ शाही ने बेचैनी भरे स्वर में कहा।

इसके बाद तीनों जने दशरथ महल से निकलकर तीसरी गली में मौजूद स्वामी माधवानंद जी के निवासस्थान पर पहुंचे। माधवानंद जी के आश्रम में अच्छी खासी भीड़ लगी हुई थी।

उन्होंने देखा माधवानंद जी ने अपने सामने रामचरितमानस की एक प्रति रखी थी। लोग उनके पास जाते माधवानंद जी उनकी समस्या लिखते और उसके बाद आंख बंद कर भगवान श्री राम का नाम लेकर रामचरितमानस कोई भी पन्ना खोलते और उसमें पर्ची डाल देते और पुस्तक को बंद कर देते। पुनः पुस्तक खोलने पर पर्ची जिस चौपाई के सबसे नजदीक होती वे उस चौपाई को एक कागज पर लिखकर संबंधित व्यक्ति को सौंप देते।

शाही भी अन्य भक्तों की देखा-देखी लाइन में लग गया। लगभग आधे घंटे के बाद जब उनका नंबर आया तब उसने अपनी समस्या की पर्ची स्वामी जी को सौंप दी। स्वामी जी ने उनकी समस्या पढ़ी। इसमें लिखा था- ‘मुझे एक बाबा ने एक बहुत ही पुरानी अंगूठी दी है, उस अंगूठी का रहस्य क्या है? स्वामी जी ने सिर उठाकर उसकी तरफ देखा और उसके बाद अपनी आंखें बंद कर रामचरितमानस को खोल उसने शाही जी की पर्ची डाल दी। उसके बाद उन्होंने पर्ची के ठीक सामने वाली चौपाई को उसी पर्ची पर पीछे लिखकर उन्हें लौटा दिया। शाही ने अधीरता के साथ पर्ची पर लिखे दोहे को पढ़ा। उसपर लिखा हुआ था:

‘हनुमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम’

शाही जी ने उस चौपाई को पढ़ा तो उनकी समझ में कुछ भी नहीं आया। रत्नाकर ने उनके हाथ से पर्ची ले ली। लेकिन, वह भी इस चौपाई को शाही की समस्या से जोड़ पाने में असफल रहा। शाही उदास होकर बोला- “भाई अपनी समस्या वहीं की वहीं है।”

अशोक बोला- “मुझे तो लगता है कि इस पर्ची में हनुमानजी द्वारा शाही को निर्देश दिया गया है कि जब तक वे अंगूठी का रहस्य न जान लें तब तक विश्राम न करें।”

शाही ने अशोक की की राय से अपनी सहमती जतायी।

तभी जाने क्या सोचकर अर्जुन तिग्गा ने शाही से अनुरोध किया, ‘जरा मुझे पर्ची दिखाइए।’

शाही ने उसे पर्ची थमा दी।

अर्जुन तिग्गा ने मन ही मन हनुमानजी का आह्वान किया और चौपाई को पुनः ध्यान से पढ़ा तो उसके माथे पर सोच की लकीरें गहरी होती चली गईं.

रत्नाकर ने पूछा- “क्या कुछ समझ में आ रहा है?”

“हां, मुझे इस चौपाई का सन्दर्भ थोड़ा-थोड़ा समझ में आ रहा है।” शाही ने उत्साहित होकर तिग्गा से पूछा, “क्या समझ में आ रहा है?”

“मेरी समझ के अनुसार यह पच्ची में संकेत कर रही है कि हम जिस उद्देश्य से यहां आए हैं हमें पर ही केंद्रित होना चाहिए। हमें इधर-उधर भटकना नहीं चाहिए।”

अर्जुन तिग्गा का इंटरप्रिटेशन सुनकर रत्नाकर सन्नाटे में आ गया। “हे भगवान!, क्या कोई हमें हमारे मार्ग से भटकाने की कोशिश कर रहा है? ये अंगूठी कुछ और नहीं बल्कि एक मायाजाल है। इसका मतलब है कि कुछ लोगों को पता है कि हम यहां किस काम से आए हैं। और वे लोग हमें भटकाने की कोशिश कर रहे हैं।”

अर्जुन तिग्गा बोला-“हां मेरा भी यही मानना है कि फिलहाल हमें इस अंगूठी से अपना ध्यान हटाकर मुख्य कार्य पर अपना ध्यान केंद्रित करना चाहिए।”

“लेकिन अंगूठी का राज क्या है भाई?, शाही ने प्रश्न किया।

अशोक बेहद संजीदा शक्ल बनता हुआ बोला-“अरे पगला, तुम्हें अभी तक समझ में नहीं आया। इस चौपाई के अनुसार यह अंगूठी एक धोखा है। किसी ने हमें हमारे मार्ग से भटकाने के लिए इसका इस्तेमाल किया है।”

उसकी बातें सुनकर शाही उदास हो गया।

“हम कल सुबह-सुबह रानुपल्ली आश्रम की तरफ चलेंगे। लेकिन एक बात समझ लेना है कि हमारे इस मिशन की जानकारी हमारे अलावा किसी और को भी है, और वह बहुत बेताबी से हमारे अगले कदम की प्रतीक्षा कर रहा है। रामचरितमानस से स्पष्ट निर्देश मिला है कि हमें अपने लक्ष्य पर केंद्रित रहना है।” अर्जुन तिग्गा बिना किसी लाग लपेट के अपनी बात बोल गया।

“खतरा हमारे आसपास भटक रहा है, और वह जानना चाहता है कि हमारा अगला कदम क्या है।”, अशोक ने उसकी ‘हाँ’ में ‘हाँ’ मिलायी।

अगले दिन सुबह-सुबह जब वे बाहर जाने की तैयारी कर रहे थे, शाही को अशोक की तबीयत ठीक नहीं लगी।

शाही बोला-“अशोक भाई, तुम आराम करो! बाहर कड़ी धूप में तुम्हारी तबीयत और भी बिगड़ जाएगी। हमलोग दोपहर तक लौट आएंगे। आते वक्त तुम्हारे लिए कुछ हल्का भोजन भी लेते आयेंगे।”

अशोक की तबीयत सचमुच गड़बड़ थी। इसलिए उसने भी साथ जाने की जिद नहीं की।

अशोक को होटल के कमरे में छोड़ कर जब तीनों होटल के गेट से बाहर आये तो पाया ड्राइवर दर्शन सिंह गाड़ी के पास खड़ा उनका इंतजार कर रहा था। रत्नाकर आगे वाली सीट पर बैठ गया। पीछे वाली सीट पर शाहीजी बैठ गए।

अचानक अर्जुन तिग्गा को न जाने क्या सुझा वह बोला-“ड्राइवर साहब, आज आप होटल के कमरे में अशोक भाई की देखरेख कीजिए, क्योंकि उनकी तबियत खराब है। आपके स्थान पर आज गाड़ी मैं ड्राइव कर लूंगा।”

दर्शन सिंह के चेहरे पर उदासी छा गई। वह चुपचाप गाड़ी से नीचे उतर गया। अर्जुन तिग्गा ने ड्राइवर वाली सीट संभाल ली।

शाही ने सशंकित स्वर में पूछा-“ड्राइव तो कर लोगे ना श्रीमान अर्जुन तिग्गाजी महाराज?”

अर्जुन ने धीरे से हंस कर उत्तर दिया, “हां कर लूंगा। कोई दिक्कत नहीं होगी। और, आज हम लोग एक विशेष जगह चलेंगे।”

तिग्गा का आत्मविश्वास देख शाही बोला, “तिग्गाजी, हनुमानजी के दर्शन के बाद तो आपके रंग-ढंग ही बदल गए हैं। लेकिन, यह तो बता दीजिये कि आप हमें लेकर कहाँ जा रहे हैं?”

“हम अभी जिस चीज की तलाश कर रहे हैं उसका संबंध कहीं ना कहीं सिखों से तो जरूर है। यहाँ एक बहुत ही पुराना गुरुद्वारा है। इसका नाम है ब्रह्मा कुंड। यह गुरुद्वारा ऐतिहासिक है। सन् 1511 में प्रथम गुरु नानकदेव हरिद्वार से जगन्नाथपुरी जाते हुए अयोध्या

पहुंचे थे और सरयू तट स्थित ब्रह्मा जी के तपस्थान पर धूनी भी रमाई थी।”

वह साँस लेने के लिए रुका फिर बोला-“यह गुरुद्वारा इसी स्थान पर बना है। यह गुरुद्वारा इतना खास है कि सन् 1668 में आसाम से आनंदपुर जाते हुए गुरु गोविन्द सिंह भी यहाँ आये थे। उनसे पहले गुरु तेगबहादुर भी इस स्थल पर आए थे और 48 घंटे तक अखंड तप किया था। इसलिए एक बार हमें ब्रह्म कुंड जाकर थोड़ी जानकारी इकट्ठी जरूर करनी चाहिए। क्या पता कुछ काम की चीज निकल आये!!”

रत्नाकर ने सहमती की मुद्रा में अपना सिर हिलाया और बोला-“हां, एक बार वहां जाने में कोई हर्ज नहीं।”

लगभग आधे घंटे बाद जब वे ब्रह्मकुंड गुरुद्वारा पहुंचे तो पाया वहां एक बहुत ही खूबसूरत गुरुद्वारा वहां बना हुआ था। श्रद्धा भाव से अपने सर पर रुमाल बांधकर गुरुद्वारा के अंदर गए। गुरु ग्रंथ साहब के पास मत्था टेका और उसके बाद केंद्रीय कक्ष में पहुंचे। केंद्रीय कक्ष में बहुत सारे सिख गुरुओं की तस्वीर लगी हुई थी। गुरु गोविंद सिंह, तेग बहादुर, गुरुनानक आदि। कार्यालय में एक सिख सेवादार बैठा हुआ था। वे कार्यालय के भीतर ही कुर्सियों पर बैठ गए। उन्हें वहां पता चला सन् 1511 में गुरु नानक देव इस तीर्थ स्थल पर आए थे, तथा रामजन्मभूमि मंदिर में पर रामलला के दर्शन किए थे। उसे समय बाबर का आगमन भारत में नहीं हुआ था तथा रामलला का मंदिर संरक्षित था। मंदिर का विध्वंस गुरु नानक देव जी के अयोध्या की यात्रा के बाद सन् 1527 में बाबर के सेनापति मीर बाकी ने किया था।

रत्नाकर बोला-“ये बहुत काम की जानकारी है।”

“लेकिन भाई यह जानकारी हमारे काम की कैसे हुई”, शाही ने प्रश्न किया।”

“देखो यहां आने से इस बात का तो स्पष्ट पता चल गया कि सिख गुरु इस तीर्थ स्थल पर बार-बार आते थे। इससे तो यह सिद्ध होता ही है कि 1527 से पहले यह हिन्दुओं और सिखों का एक बेहद

पवित्र तीर्थ स्थल था, जहाँ भारत के कोने-कोने से लोग आया करते थे। जाहिर है अयोध्या श्री राम जन्मभूमि है तो एक प्राचीन राम जन्मभूमि मंदिर भी रहा होगा, जो कि अब यहाँ नहीं है, अगर नहीं है तो पूर्व में कहीं पर तो होगी। लेकिन कहाँ? उसी स्थान पर जहाँ आज बाबरी मौजूद है।”, रत्नाकर ने उत्तर दिया।

अचानक अर्जुन तिग्गा रत्नाकर को संबोधित करते हुए बोला-“इस दस्तावेज को देखिये- ‘1857 में निहंग सिखों ने बाबरी मस्जिद परिसर पर कब्जा कर लिया था तथा वह काफी दिनों तक वहाँ पर रहे थे। और उन्होंने इसकी दीवारों पर राम नाम भी लिख दिया था। अंग्रेजी सरकार ने उन पर पुलिस केस भी किया था। मतलब, सिखों का राम जन्मभूमि और अयोध्या से बहुत नजदीकी सम्बन्ध है।

लेकिन, एक बात और मेरी समझ में आ रही है कि जिस चीज की हम तलाश कर रहे हैं, सिख संत उस साक्ष्य को सुरक्षित रखने के लिए दूरदराज के किसी गुरुद्वारा में सुरक्षित रखवा देते। गोंसाई घमंडी गिरी को सौपने के बजाय सिख सैनिकों के माध्यम से हिमालय की तराई में किसी सुरक्षित स्थान पर भेज देते।”

रत्नाकर ने तर्क दिया-“ शायद, उनकी इच्छा रही होगी कि इसे वही लोग अपने पास सुरक्षित रखें जिनका इससे सबसे ज्यादा नजदीकी सम्बन्ध है तथा जिन्हें भविष्य में इसकी सबसे ज्यादा आवश्यकता पड़ने वाली थी। इसे अपने पास भी रख सकते थे, लेकिन, उस कालखंड में मुगलों और सिखों के बीच भयानक युद्ध चल रहा था ऐसी स्थिति में खतरा यह था कि बेशकीमती वस्तु या तो मुगलों के हाथों चली जाती या फिर नष्ट हो जाती। शायद यही वजह रही होगी कि उन्होंने उसे अयोध्या में ही किसी सुरक्षित स्थान पर रखने के लिए घमंडी गिरी के माध्यम से भेज दिया होगा।”

“लुटेरे लूट के इरादे से कहाँ जाते हैं?”, उसने प्रश्न किया। फिर स्वयं ही उत्तर देते हुए बोला- “उस स्थान पर जहाँ खजाना होता है। मुगल लुटेरे जब अयोध्या आये होंगे तो उनके निशाने पर भव्य मंदिर होंगे, क्योंकि वहाँ सोने चाँदी के कीमती आभूषण, सिक्के और

धन मिलता । इसलिए उस वस्तु को किसी मंदिर में नहीं रखा गया होगा । या तो जमीन में गाड़ा गया होगा या दूर दर्रा के किसी मठ में रखा गया होगा जहाँ संन्यासी रहते होंगे ।”

“.....लेकिन यहाँ तो सैकड़ों छोटे-बड़े मठ हैं । सभी मठों की जाँच-पड़ताल करना असंभव है”, शाही ने शंका जाहिर की ।

“किसी प्रसिद्ध मठ में नहीं बल्कि किसी लो प्रोफाइल वाले मठ में जहाँ चमक दमक और दिखावा बिल्कुल न हो”, अर्जुन ने सुझाया ।

शाही ने सहमती की मुद्रा में सिर हिलाते हुए कहा, “लेकिन, यहाँ तो लो प्रोफाइल वाले भी बहुत सारे मठ हैं ।”

“कोई पुराना मठ जो कमसे कम तीन सौ साल पुराना हो, संत अर्जुन देव के समय का मठ या उससे भी पुराना ।” अर्जुन ने राय दी ।

‘और शायद कोई ऐसा प्राचीन मठ जो हिन्दुओं और सिखों दोनों की प्राचीन परम्पराओं को जोड़ता हो, और जिसके बारे में सिख गुरुओं के भी संज्ञान में हो, लेकिन ऐसा कौन सा मठ हो सकता है?’, रत्नाकर के ललाट पर बल पड़ गए ।

“एक ऐसा ही प्राचीन मठ अयोध्या में सदियों से है । इस मठ का सम्बन्ध सिख गुरुओं से भी है और अयोध्यापति राम से भी!”, बताने वाला आश्रम का वह अधेड़ सिख सेवादार था, कार्यालय में जिसके समक्ष चर्चा चल रही थी

“ये रानोपाली मठ कहाँ है?”, तिग्गा ने उत्सुकतावश पूछा ।

“तीन-चार मील होगा यहाँ से! सरजू नदी के किनारे, उसी स्थान से श्रीरामजी ने सरजू नदी पार कर वनगमन किया था । इसी स्थान पर रामजी, माता सीता और लक्ष्मणजी ने अपने राजसी वस्त्र और आभूषण त्यागकर वनवासियों जैसे सादे वस्त्र धारण किये थे । इन वस्त्रों में एक अद्भुत तरह की सादगी और चमक दमक के प्रति उदासीनता थी । इसी लिए इस आश्रम को उदासीन आश्रम कहा जाता है”, सेवादार ने उत्तर दिया ।

उसकी बातें सुनकर रत्नाकर की आँखों में चमक आ गई। वह बोला- “शायद हमें इसी आश्रम की तलाश थी।”

“वहां कुछ और खास है क्या?” , उसने प्रश्न किया।

‘खास क्या है, बहुत पुराना मठ है। इस मठ के संन्यासी पनी विरासत को गुरु नानक के सबसे बड़े पुत्र से जोड़ते हैं। उनकी समाधि स्मारक उदासी संप्रदाय के उसी रानूपाली मठ के अंदर है।”

उसकी बातें सुनकर रत्नाकर की आँखों में चमक दुगुनी गयी। उसके दिमाग में एक बात कौंधी- “एक ऐसी जगह, जहाँ सांसारिक चीजों के प्रति उदासीनता हो और जिसकी रक्षा सिख बैरागी करते हों। मुगलों के दौर में यह जगह यकीनन सबसे ज्यादा सुरक्षित होगी।”

उसे लगा मानो वह अपने लक्ष्य के करीब पहुँच रहा है।

“क्या हम वहां अभी जा सकते हैं?” , रत्नाकर ने जिज्ञासा प्रगट की।

कर्मचारी ने उत्तर दिया, “क्यों नहीं? लेकिन बेहतर होगा कल प्रातः काल वहां जाइए।

अगले दिन सुबह-सुबह रानूपाली मठ जाने का प्रोग्राम बन गया। आज अशोक की भी तबीयत ठीक थी, इसलिए वह भी जाने के लिए तैयार हो गया। लगभग आधे घंटे की यात्रा कर वे रानूपाली के उदासीन आश्रम पहुंचे।

उदासीन आश्रम वास्तव में एक दर्शनीय स्थल था। हिंदू वास्तुकला के अद्भुत नमूने वहां दर्शनीय थे। मठ से जुड़े स्वर्गीय गुरुओं की समाधियों और मूर्तियों को उनकी स्मृतियों के रूप में सहेज कर रखा गया था। सामने ही एक छोटी सी गौशाला थी। अतिथियों के लिए छोटे-छोटे कमरे बने थे। हरे-भरे पेड़ों से सजा-संवारा यह आश्रम यकीनन अयोध्या के सर्वाधिक मनोरम स्थलों में से एक था।

आश्रम के पास ही सरजू नदी धीरे-धीरे प्रवाहमान थी। भोर की लालिमा के साथ वातावरण में ‘भक्ति और आस्था’ का अद्भुत

सम्मोहन व्याप्त था। भक्त सामने बने छोटे से कुएँ से जल लेकर देवालयों में पूजा हेतु जा रहे थे।

आश्रम के पास ही एक छोटा सा शिवालय था। शिवालय देख अशोक का मन डोल गया। 'अगर हम सभी सरयूजी का पवित्र जल लेकर भगवान शिव का जलाभिषेक करें तो कैसा रहेगा?'

सरयू नदी का जिक्र आते ही रत्नाकर का मन उदास हो गया। उसे दुर्गियाना मंदिर से प्राप्त पुरानी पाण्डुलिपि में मौजूद दोहे की याद आ गई। कहाँ फलगु कहाँ सरयू? एक पल के लिए उसका मन बैठ गया।

अर्जुन ने उसके चेहरे पर पसरी उदासी को भांप लिया। उसने धीरे से उसकी हथेली को अपने हाथ में लेकर सांत्वना के भाव के साथ दबाया। इधर सभी ने अशोक की राय के साथ अपनी सहमती जता दी थी, फलतः दर्शन सिंह के गाड़ी का रुख सरजू नदी की तरफ मोड़ दिया।

सरयू नदी में स्नान कर चारों मित्र जलपात्रों में सरजू का पवित्र जल भर वापस उदासीन आश्रम की तरफ पैदल ही बढ़ गए। उनके पीछे-पीछे दर्शन सिंह भी गाड़ी लेकर आ गया।

शिवालय में भीड़ बिलकुल नहीं थी।

अन्दर बैठा एक पुजारी भक्ति-भाव के शिवस्तोत्र का पाठ कर रहा था। चार नए लोगों को मंदिर में प्रवेश करते देखा उनके मन में जिज्ञासा जागी। पूछा- 'कहां से आए हो? स्नान कहाँ किया?'

“सरयू में!” शाही ने उत्तर दिया।

.....और यह जल?

‘जी, सरयूजी का ही जल है।’ शाही ने उत्तर दिया।

सरयूजी का जिक्र सुनते ही पुजारी मुस्कुरा पड़ा, “हमारे रामलला की प्यारी पवित्र सरजूजी एक शापित नदी हैं, इसका जल पूजा के लिए इस्तेमाल नहीं होता। सरयूजी के जल में ही रामजी ने अपनी लीला समाप्त की थी। जिस वजह से भगवान शिव सरयूजी पर बहुत क्रोधित हुए थे और उन्होंने सरयूजी को श्राप दे दिया था कि तुम्हारा जल मंदिर में चढ़ाने के लिए इस्तेमाल नहीं किया

जाएगा। साथ ही किसी पूजा-पाठ में भी तुम्हारे जल का प्रयोग नहीं किया जाएगा। माता सरयू के बहुत विनती करने पर भगवान भोलेनाथ ने मां सरयू से कहा कि मैं अपना श्राप तो वापस नहीं ले सकता लेकिन, बस इतना हो सकता है कि तुम्हारे जल में स्नान करने से लोगों के सारे पाप धुल जाएंगे। परन्तु, तुम्हारे जल का इस्तेमाल पूजा-अर्चना के कार्य में नहीं किया जाएगा। भारतवर्ष में सिर्फ दो नदियाँ ऐसी हैं जो अत्यंत पवित्र भी हैं और शापित भी। एक भगवान् श्री विष्णु के चरण रज को चूमती मुक्तिदायिनी फल्गु है और दूसरी हमारे राम लला की प्यारी ‘माता सरजू’!”

पंडित की बातें सुनकर रत्नाकर को लगा मानो वह खुशी पागल हो जाएगा।

वह तिग्गा को झकझोरते हुए बोला, “अर्जुन! सरजू नदी एक शापित नदी है। इसका मतलब है कि हम बिल्कुल सही जगह पर जा रहे हैं। श्री राम के अवध से जुड़ा वह रहस्यमय साक्ष्य यकीनन यहीं कहीं पर होना चाहिए।”

रत्नाकर ने शिवलिंग के सामने दंडवत करते हुए क्षमा प्रार्थना की, “महादेव, रामजी के काज से निकले हैं। इस घड़ी जाने की आज्ञा दें। इसके बाद पुजारी को संबोधित करते हुए बोला, “.... आज आपने कितना बड़ा काम किया है, आपको पता नहीं?”

इसके बाद पुजारी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बगैर चारो धनुष से निकले बाण की तरह शिवालय से बाहर निकले।

अचानक अर्जुन तिग्गा ने उतावलेपन के साथ पूछा- “पाण्डुलिपि की तस्वीर कहाँ है?”

“मेरी मोबाईल में है”, रत्नाकर ने उत्तर दिया।

“मोबाईल कहाँ है?” तिग्गा ने पूछा।

“दर्शन सिंह के पास है”, कहते हुए रत्नाकर ने कांपते हाथों से दर्शन सिंह से अपना मोबाईल लेकर उसकी फोटो गैलरी में पाण्डुलिपि की तस्वीर खोजने लगा।

तस्वीर नदारद थी।

किसी अनहोनी को भांपते हुए उसने घबराए हुए स्वर में शाही से पूछा, “कैमरा कहां है?”

“गाड़ी में है!”, शाही ने जल्दी से उत्तर दिया। फिर उसने दर्शन सिंह से कहा, “दर्शन, गाड़ी में मेरा कैमरा है। उसे जल्दी लेकर आओ।”

दर्शन सिंह दौड़ता हुआ गाड़ी की तरफ भागा।

रत्नाकर के लिए एक एक पल भारी पड़ रहा था। वह चिल्लाया, “दर्शन सिंह! क्या कर रहे हो? जल्दी कैमरा लेकर आओ।”

उत्तर में दर्शन सिंह जोर से चिल्लाया, “कैमरा नहीं मिल रहा है?”

“ठीक से देखो शाही के बैग में है।”, रत्नाकर ने उसे निर्देश दिया।

“मिल गया!!”, दर्शन सिंह उत्साह से चिल्लाया। दर्शन सिंह कैमरा लेकर भागता हुआ आया। तिग्गा ने उसके हाथ से कैमरा ले लिया।

“इसका स्विच दाईं तरफ है। वही से ऑन होगा।”, रत्नाकर बोला।

तिग्गा बोला, “कमाल है! यह पहले से ही ऑन है।” रत्नाकर ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। जल्दी से उसने तिग्गा के हाथों से कैमरा लिया तस्वीरों को देखने लगा। कैमरा पूरी तरह से खाली था। उसमें एक भी तस्वीर नहीं थी। रत्नाकर को लगा मानो वह पागल हो जाएगा। उसने तीखी नज़रों से दर्शन सिंह की तरफ देखा। दर्शन सिंह दूसरी तरफ देख रहा था।

फिर अचानक उसे लगा जैसे किसी ने उसके हाथों पर झपट्टा मारा हो। उसने चौक कर सामने देखा। यह एक विशालकाय वानर था। उसने अगले प्रयास में झपट्टा मार कर रत्नाकर के हाथ से कैमरा छीन लिया और बिजली की गति से वहां से भाग खड़ा हुआ।

सभी लोग पागलों की तरह वानर के पीछे भागे। उन्हें अपने पीछे आता देख किसी प्रशिक्षित वानर की तरह उसने अपने गले में

कैमरे को लटकाया और कुलांचे भरता हुआ पीपल के एक विशाल पेड़ पर चढ़ गया।

सभी लोग किकर्तव्यविमूढ़ होकर पेड़ की सबसे ऊपर वाली शाखा पर बैठे वानर की तरफ देखने लगे।

उधर वह वानर अपनी मस्ती में था, वह कैमरे को उलट-पलट कर जिज्ञासु नजरों से देख रहा था। तभी अचानक दर्शन सिंहने एक पत्थर उठाया और गाली देते हुए पूरी ताकत के साथ वानर की तरफ फेंका। पत्थर सीधे जाकर उसके पेट पर लगा। वानर दर्द से बिलबिला उठा। फिर..... उसने गुस्से से दांत किटकिटाते हुए कैमरे को गले से निकालकर उसे पूरी ताकत के साथ दर्शनसिंह की तरफ फेंक कर मारा। चोट से बचने के लिए एक तरफ हो गया और कैमरा नीचे पथरीली जमीन से टकराकर चूर-चूर हो गया।

अर्जुन गुस्से से चीखा, “दर्शन सिंह! अक्ल के अंधे तूने क्या किया? बेवकूफ यह इंटरनल मेमोरी वाला कैमरा था, और वह अपना सिर पकड़ कर वहीं फर्श पर बैठ गया।

हृदय में उम्मीद की आखिरी किरण के लिए अर्जुन टूटकर चकनाचूर हुए कैमरे को उठाने के लिए आगे बढ़ा। कैमरा सरल पत्थरों पर गिरकर पूरी तरह से चकनाचूर हो चुका था। अर्जुन तिग्गा के उसके चेहरे पर घोर निराशा के स्पष्ट भाव उभरे।

अचानक उसकी नजर उसपथरीले फर्श पर पड़ी जिसपर कैमरा गिरा था। पत्थर से बने फर्श पर ब्राह्मी लिपि में कुछ लिखा हुआ था। लेकिन, भाषा संस्कृत थी। उसने पढ़ा:

**‘कोसल-अधिपेन दविर-अश्वमेध-यजिनः सेनापतेः पुष्यमित्रस्य षष्ठेन
कौशिकी-पुत्रेण धन’**

‘धर्मराज पितुः फल्गुदेवस्य केतनं करितम्’

उसे लगा मानो वह पागल हो जायेगा। वह पागलों की तरह जोर से चिल्लाया- “मिल गया..... रत्नाकरजी हमें मिल गया!!”

“रत्नाकरजी आपके फल्गु यहाँ विराजमान हैं, इस प्राचीन शिलालेख पर!! इस अभिलेख को पढ़ो इसमें तुम्हारे फल्गु देव भी है कोसलपति भी”...., वह रुंधे गले से बोला ।

रत्नाकर दौड़ता हुआ आया । उसे ब्राह्मी लिपि का ज्ञान नहीं था, लेकिन, उसे अर्जुन की बातों पर यकीन था । वह फूट-फूट कर रोने लगा । उसने रुंधे गले से अर्जुन से अनुरोध किया-“अर्जुन!, मेरे भाई !! इस शिलालेख का अर्थ मुझे समझाओ ।”

“भाई यह शिलालेख बाईस सौ साल पुराना है । इसमें लिखा है- ‘धनदेव कोसल के राजा, कौशिकी के पुत्र, सेनापति पुष्यमित्र के छोटे पुत्र, जिन्होंने दो बार अश्वमेध किया था, ने धर्मराज के पिता फल्गुदेव की याद में इस स्थान पर एक धर्मस्थल बनवाया था.....मतलब यह कि यह नगर कोसल है, जो बाईस सौ साल पहले भी अति पवित्र तीर्थ स्थल था और इसी नगर में राम जन्म मंदिर का निर्माण हुआ था ।”

रत्नाकर भूमि पर बैठकर, कांपते हाथों से उस अति प्राचीन शिलालेख को स्पर्श करने लगा ।

अर्जुन जब थोड़ा संयत हुआ तो दौड़कर पीपल के विशाल पेड़ की तरफ भागा ।

पेड़ की शाखाओं के बीच उसकी निगाहें अपने इष्टदेव को तलाश रही थी । अचानक उसे घनी शाखाओं और पत्तियों के बीच बेहद आकर्षक एक जोड़ी भूरी आँखें दिखीं, जो उसे लगा मानों वे उसे ही वात्सल्य भाव से देख रही हों । वह भावुक स्वर में बोला-.....’ हे पिंगाक्ष ! तुमने मुझे चुना था, इस महान राम कार्य के लिए??”

वह स्वतः ही भूमि पर दंडवत हो गया । “हे पिंगाक्ष! हे मेरे परमपिता, मेरे परमेश्वर! तुम्हारी वे आकर्षक भूरे नेत्र मुझे आज तो याद है !! । ये तुम ही हो, उस दिन जंगल में भी तुम ही थे, गयातीर्थ के फल्गु तट पर भी तो तुम्ही थे और आज भी तो तुम ही हो.... !” और फिर धीरे-धीरे उसकी आँखें आंसुओं के उद्देग से भरती

चली गई और पत्तियों के बीच झांकते बेहद आकर्षक अलौकिक भूरे नेत्र उसकी आँखों से ओझल होते गए।”

रत्नाकर के अनुमान लगाया, “अयोध्या अभिलेख को घमंडी गिरी जी महाराज ने पीपल के वृक्ष ने नीचे इस स्थल पर इस तरह स्थापित किया था कि किसी को संदेह ना हो, क्योंकि उन्हें पक्का विश्वास था कि सैकड़ों सालों बाद ही सही कोई न कोई इसके महत्व को समझते हुए इसे खोजता हुआ यहाँ आएगा।”

अर्जुन तिग्गा ने अपनी राय दी- “मेरी राय में यह प्राचीन शिलालेख प्राचीन राम जन्मभूमि मंदिर में पिछले बाईस सौ सालों से था, मीर बाकी के तुर्की सैनिकों ने राम जन्मभूमि मंदिर को नष्ट करते समय इस शिलालेख को बेकार पत्थर समझकर नजरअंदाज कर दिया होगा। मंदिर के विध्वंस के उपरांत इस शिलालेख को ब्राह्मी और संस्कृत के जानकार विद्वान ने वहाँ से हटा कर किसी दूसरी जगह पर रखवा दिया होगा। जो कालान्तर में सिख संतों के पास पहुँची होगी। संभवतः उन्हें भी इस अभिलेख के महत्व जानकारी हो गई थी, अतः उन्होंने इस शिलालेख को घमंडी गिरी के माध्यम से यहाँ इस मठ में सुरक्षित रखवा दिया था।”

शाही उसकी राय का समर्थन करते हुए बोला –“ये संत-महात्मा भविष्यद्रष्टा होते हैं। उन्हें पता था कि जब समय का पहिया घूमेगा तब ऊँचे-ऊँचे गुंबद धूल में मिल जाएंगे और तब यह सदियों पुराना टुटा-फूटा यह शिलालेख सनातन के नवीन शिखरों का निर्माण करेगा।”

अगले दिन रामलला के दर्शन के बाद रत्नाकर ने अर्जुन से पूछा-“तुम्हारी क्या योजना है? हनुमानजी की कृपा से अब हमारा काम पूरा हुआ, इस शिलालेख की जानकारी पुरातत्व विभाग को सौंपकर अब लौटने की तैयारी करनी है।”

अर्जुन उदास स्वर में बोला, “वापस गाँव लौटूंगा!, तुम्हारी तलाश तो पूरी हुई, लेकिन मेरी अब एक नयी तलाश शुरू होगी।” बचपन की एक सखा थी शिउली, जो इस दुनिया की भीड़ में न जाने कहाँ खो गई है.....उसे ही तलाशने की कोशिश करूँगा।.....उसने मुझसे कहा था कि मैं जब दिल्ली से गाँव वापस जरूर लौटूंगा और वापस नहीं जाने के लिए लौटूंगा। क्या पता गाँव वापस लौट कर वह मेरे लौटने का इन्तजार कर रही हो!”, उसके स्वर में उदासी थी।

उसकी उदासी को भांपते हुए अशोक बोला- “तिग्गा साहब तुमपर तो हनुमानजी की विशेष कृपा है..... और हनुमानजी से बड़ा खोजी कौन है इस ब्रह्माण्ड में? मुझे पूरा यकीन है कि तुम्हारे इष्टदेव तुम्हारी इच्छा को पूरा करेंगे।”

“रत्नाकर भाई तुम्हारी की क्या योजना है?”, अर्जुन ने प्रश्न किया।

रत्नाकर ने उत्तर दिया, “राम की मर्जी जो करवायें !!”

“अरे..... दर्शन सिंह किधर गया? मैंने उसे बेवजह बहुत ज्यादा बुरा-भला कह दिया था।”, रत्नाकर अफ़सोस भरे शब्दों में बोला।

“वह अब नहीं दिखेगा। मैंने उसे उसी दिन पहचान लिया था जब वह बिंदी वाले साधू से बातचीत कर रहा था। शायद वह हमारी खोज में व्यवधान डालने के लिये ही हमारे साथ था।”, अर्जुन ने उत्तर दिया।

“हमारे समाज में न जाने कितने भटके हुए दर्शन सिंह हैं। जब वे सत्य को जानेंगे तो वापस घर लौट आयेंगे। सत्य से बड़ा कोई तर्क नहीं और ईश्वर से बड़ी कोई अनुभूति नहीं!”, पहली बार अशोक के शब्दों में दार्शनिकता के भाव थे।

ईसवी सन, 2017
आंजन ग्राम , गुमला, झारखण्ड

अर्जुन तिग्गा जब वापस आंजन ग्राम लौटा तो उसके हृदय से सारे भय खत्म हो चुके थे। वह तेज क़दमों से चलता हुआ अपने घर पहुंचा। किन्तु, घर के मुख्य द्वार खोलते के साथ ही हृदय में एक अपराध-बोध जागा- ‘बरामदे में टंगी पिता की तस्वीर पर धूल की गर्द मोटी हो गई होगी। महीनों पहले तस्वीर चढ़ाई गई माला के फूल भी सूख कर झड़ गए होंगे।’

लेकिन, घर के बरामदे में प्रवेश करते ही वह भाव विभोर हो उठा। बरामदे की सूरत बदली हुई थी। स्वर्गवासी पिता की तस्वीर पर धूल का एक कतरा तक न था और आज ही किसी ने उसपर शिउली के ताजा-ताजा फूलों की माला चढ़ाई थी। सारे वातावरण में शिउली के ताजा फूलों की सुगंध बिखरी हुई थी !! हर्ष की एक लहर उसके हृदय को छूती हुई गुजर गई। उसके होंठों से चंद शब्द फूटे, “शिउली!! यकीनन वह यहीं है।” फिर..... अर्जुन तिग्गा के बड़ी उम्मीद के साथ इधर-उधर ताका..... शायद भूरे नेत्रों वाले

उसके संकट मोचक के दर्शन हो जाएँ, किन्तु उसके हाथ निराशा ही लगी ।

एक वर्ष बाद जब उनके घर पुत्र का जन्म हुआ तो शिउली ने प्रश्न किया, “इसकी आँखें न तो मुझपर गई हैं और न तुमपर! पता नही यह किस पर गई हैं?”

अर्जुन तिग्गा हंसा! उसे भली-भांति पता था कि नवजात शिशु की भूरी आकर्षक आँखें किस पर गई हैं। उसके हृदय में एक मद्धम सा संगीत फूटा, ‘यह भी पिंगाक्ष है!!- हनुमंत महाराज की तरह!!’

समाप्त